हिन्दी-समिति-ग्रन्थमाला—६१

क्रोमैटोग्राफी

[विश्लेषण की नवीन पद्धति]

लेखक

आर० सी० ब्रिम्ले

तथा

एफ० सी० बैरेट

अनुवादक

डा० हरिभगवान्

हिन्दी-समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

प्रकाशकीय

पिछले कुछ वर्षो से क्रोमैटोग्राफी, विश्लेषण एवं उद्योग से सम्बन्धित रसायनज्ञ के लिए तथा नीव-सम्बन्धी वैज्ञानिक क्षेत्रो मे शोधकर्त्ता के लिए, अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण बनती जा रही है। प्रतिदिन इस नवीन विश्लेषणविधि का नयी समस्याओ के सुलझाने में उपयोग हो रहा है। इससे उन प्रश्नो के संबध में अन्वेषण करने में भी सहायता मिली है जो कुछ वर्ष पहले तक दुस्साध्य समझे जाते थे।

आधुनिक एव भावी विज्ञान के विकास मे इस नवीन विधि का विशेष महत्त्व है, इसी से हिन्दी समिति ने श्री ब्रिमले और श्री बैरेट द्वारा लिखित इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने का निश्चय किया। अनुवादक डाक्टर हरिभगवान् ने यथासम्भव सरल भाषा का प्रयोग करते हुए इस बात की चेष्टा की है कि विज्ञान मे रुचि रखनेवाले हिन्दी के पाठकों को थोड़े मे इसकी जानकारी हो जाय और वे इसका व्यावहारिक पक्ष अधिक आसानी से समझ सकें। पुस्तक में जो ३४ चित्र दिये गये है, उनसे भी इस लक्ष्य-सिद्धि में सहायता मिलेगी, ऐसी आशा है।

लीलाधर शर्मा 'पर्वतीय'
सचिव, हिन्दी समिति

विषय-सूची

प्राक्कथन

यदि आधुनिक रसायन-शास्त्र के अनेक क्षेत्रों पर विहगम दृष्टि डाली जाय तो उन सब में क्रोमैटोग्राफ़ी के नवीन ज्ञान की धारा बहती जान पड़ती है। आजकल क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि वह अब सर्वसाधारण विधि समझी जाने लगी है। किन्तु इस विधि को और इस नवीन विज्ञान को अभी तक न तो स्कूलों की पाठ्य-पुस्तकों में स्थान मिला है और न ही कोई सरल छोटी पुस्तक अध्यापको तथा इस विधि को उपयोग में लाने वालों को प्राप्य है। इस पुस्तक के लेखक इस प्रकार की सरल छोटी पुस्तक के लिखने के अधिकारी है, क्योकि वे दूसरे विश्व-युद्ध के बाद से क्रोमैटोग्राफ़ी की नवीन विधियों के विकास एवं भोजन संबंधी वैज्ञानिक अन्वेषणों मे उनके विविध व्यावहारिक उपयोग के उत्थान में लगे हुए है। श्री एफ़० सी० बैरेट ने श्री एफ०ए० आइशरउड के साथ पौधो के सार में कार्बनिक अम्लों का अध्ययन किया। इन अन्वेषको ने श्री एम० ए० जर्मिन के साथ पौधों की कोशिका-भित्ति की रचना का अध्ययन किया; श्री बैरेट ने श्री सी० एस० हानेस और श्री एफ० ए० आइशरउड के साथ कागज़-क्रोमैटोग्राफी की विधि का फ़ास्फ़ेट एस्टर के अध्ययन में भी उपयोग किया। श्री आर० सी० ब्रिम्ले ने श्री एस० एम० पार्ट्रिज और श्री आर० जी० वेस्टल तथा अन्य लोगों के साथ प्रोटीन के जल-विश्लेषित पदार्थो और मांस-पेशी, तथा चुकन्दर के रसों के परीक्षण में आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफ़ी का उपयोग किया। इन विश्लेषणात्मक अन्वेषणों के अतिरिक्त उन्होने लो टेम्परेचर स्टेशन मे कार्य करने वाले अन्य वैज्ञानिकों के साथ पौधों के ऊतक (टिशू) में फ़ीनोल-संबंधी पदार्थो और रंग-द्रव्यों (पिगमेंटों) के पृथक्करण तथा पहचान पर, वाष्पशील वसीय अम्लों और अमीनों के पृथक्करण पर, "ब्राउनिंग प्रतिक्रिया" से संबधित रासायनिक पदार्थो के पृथक्करण पर और इसी प्रकार की अन्य क्रोमैटोग्राफ़ीय समस्याओं पर कार्य किया है।

इस पुस्तक की प्रशंसा करने में मुझे प्रसन्नता होती है। जिस दक्षता से लेखकों

ने नवीन ज्ञान को सरल बनाया है और जिस लगन से उन्होंने यह कार्य पूरा किया है उसके लिए मै उन्हे बधाई देता हूँ। पुस्तक इस योग्य है कि इसे अच्छी सफलता प्राप्त हो और इस के लिए मैं अपनी शुभ-कामनाएँ प्रकट करता हूँ।

२६ अगस्त, १९५२ **ई० सी० बाटे-स्मिथ**

प्रस्तावना

यह पुस्तक लिखने का कारण यह है कि हम लोगों का विश्वास था कि इस प्रकार की पुस्तक की विशेष रूप से आवश्यकता है। काग़ज़ क्रोमैटोग्राफ़ी पर या पुरानी विधि अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफ़ी पर कई पुस्तकें है; किन्तु इस विषय की नवीन पुस्तक में विभाजन और आयन-विनिमय की क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि का भी उल्लेख होना आवश्यक है।

क्रोमैटोग्राफ़ी पर कार्य करने वालों को आरंभ मे व्यावहारिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। प्रथम, उन्हें नवीन विधियों का विज्ञान (टेक्नीक) जानना चाहिए; द्वितीय, उन्हें यह जानना चाहिए कि इन विधियो का किन क्षेत्रो मे उपयोग हो सकता है। यह पुस्तक लिखते समय इन दोनों बातों को सदैव ध्यान में रखा गया है। सैद्धान्तिक आलोचना तभी की गयी है जहाँ पर उसका सीधा व्यावहारिक उपयोग हो सकता है।

लेखक निम्नलिखित व्यक्तियों और कम्पनियों के, जिन्होंने सारणियों एवं चित्रों को इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, बड़े आभारी है— डा० ई० सी० बाटे-स्मिथ; डा० एफ़० ब्राउन; डा० डी० कैवेलिनी; डा० डी० के० हेल; डा० एफ़० ए० आइशरउड; परमुटिट क० लिमिटेड के डा० टी० आर० ई० क्रेसमान; डा० एम० लेडेरर; प्रोफ़ेसर आर० पी० लिनस्टेड, एफ़० आर० एस०; डा० ए० जे० पी० मार्टिन, एफ़० आर० एस०; डा० एस० मूर; डा० एस० एम० पार्ट्रिज; डा० डी० एम० पी० फ़िलिप्स, मेसर्स एच० रीव ऐन्जिल एंड कंपनी लिमिटेड; दी शैंडन साइंटिफ़िक कंपनी लिमिटेड; डा० जे० एम० शेवन; श्री ए० स्नो; श्री आर० जी० वेस्टल; और डा० आर० जे० विलियम्स।

हम लोग लो टेम्परेचर रिसर्च स्टेशन के शोध-कर्ताओं और विशेष रूप से उसके सुपरिन्टेन्डेन्ट डा० ई० सी० बाटे-स्मिथ की सहायता एवं सलाह के लिए बड़े कृतज्ञ है। यदि इस पुस्तक में कोई खूबी है तो उसका कारण इस प्रयोगशाला का वह वातावरण है जिसमें लेखकों ने कार्य किया है।

आर० सी० ब्रिम्ले

एफ़० सी० बैरेट

नोट—

बड़े दुःख के साथ में यह नोट लिख रहा हूं। जब यह पुस्तक प्रेस में थी तो मेरे मित्र और सहकागी आर० सी० ब्रिम्ले का अचानक देहांत हो गया और वह अपने कार्य को प्रकाशित रूप में नही देख सके।

६ मार्च, १९५३ **एफ़० सी० बैरेट**

अनुवादक का निवेदन

लगभग तीन वर्ष पूर्व मैने क्रोमैटोग्राफ़ी से संबधित विषय पर पी-एच० डी० उपाधि के लिए अग्रेजी में मौलिक थीसिस लिखी थी। उस समय ऐसा विचार था कि शोध-संबंधी वैज्ञानिक साहित्य के लिए हिंदी पुस्तको की रचना न तो संभव है और न वांछनीय, क्योंकि इस स्तर पर अधिकतर विचारधारा भी अग्रेजी में ही होती है। इस पुस्तक का अनुवाद करते समय मेरे विचार मे जो परिवर्त्तन हुआ है और जो निष्कर्ष मैंने निकाला है, उसे पाठको के समक्ष रखना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

हिंदी में उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य की रचना संभव है, क्योकि हिंदी का भारत मे लगभग वही स्थान है जो यूरोप में अंग्रेजी का है। हिंदी मे अनेक भाषाओं के शब्द हैं जिनसे किसी प्रकार की शब्दावली का सहज मे निर्माण हो सकता है; सस्कृत व्याकरण की पृष्ठभूमि मे यह कार्य काफी सरल हो जाता है।

हिंदी में वैज्ञानिक शोध-साहित्य की शीघ्रातिशीघ्र रचना वांछनीय एवं आवश्यक है क्योकि देश के भावी वैज्ञानिको को इससे शोध-कार्य में सरलता होगी। अध्ययन करते समय यह आवश्यक नही कि सारे शब्दो का पूर्ण रूप से ज्ञान होने पर ही पाठक यह कहें कि वे उस रचना को अच्छी तरह समझ गये। कभी-कभी ५-१० प्रतिशत शब्द न मालूम होने पर भी पाठक यह कह बैठते है कि उन्होने उस रचना को भली-भाँति समझ लिया। इस अस्पष्ट एव अपूर्ण ज्ञान के कारण वैज्ञानिक शोध-कार्य मे काफ़ी कठिनाई पड़ती है क्योंकि उपयुक्त प्रयोगो का आयोजन, चयन, सुधार ठीक से नही हो पाता। यह कठिनाई तभी हल हो सकती है जब मुख्य-मुख्य शोध-कार्य मातृभाषा अथवा राष्ट्रभाषा में ही पढ़े जाये क्योकि अन्य भाषाओं की अपेक्षा उसमें अपरिचित शब्दों के होने की संभावना कम हो जाती है। प्रस्तुत पुस्तक के अनुवाद के उपरात मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि इस विषय पर मौलिक थीसिस लिखने के बाद भी क्रोमैटोग्राफ़ी से सबधित मेरे विचारों में इस हिंदी अनुवाद से काफ़ी स्पष्टता आयी। यदि क्रोमैटोग्राफ़ी पर

शोध-कार्य आरंभ करने के पहले मैने यह अनुवाद किया होता, तो निःसदेह मैं अपनी थीसिस की उपादेयता और अधिक बढा सकता था।

इस व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर मै यह कहने का अधिकारी हूं कि यदि विश्वविद्यालयो मे प्रत्येक विद्यार्थी वैज्ञानिक शोध-कार्य आरंभ करने के पहले अपने विषय से सबधित उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य का हिंदी में अनुवाद अथवा सर्जन करे तो उससे दो लाभ होंगे—उसके विचार सुस्पष्ट होकर उसके मौलिक शोध-कार्य को अधिक उपादेय बनायेगे और हिंदी में उच्चतम वैज्ञानिक साहित्य का शीघ्र एव प्रामाणिक सर्जन हो जायेगा।

हरिभगवान्

अध्याय १

भूमिका

क्रोमैटोग्राफी का पिछले दस वर्षों में इतना अधिक विस्तार हो गया है कि रसायन के विद्यार्थियों के लिए अब यह आवश्यक है कि वे यह जाने कि क्रोमैटोग्राफीय विधियों का किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है। वस्तुतः क्रोमैटोग्राफी रासायनिक यौगिकों को पृथक् करने की एक नवीन विधि है, किन्तु यह प्राचीन विधियों से कुछ भिन्न है। प्राचीन विधिया यौगिकों के केवल दो भौतिक गुण-धर्मो पर निर्भर रहती थी—विलेयता[1] और वाष्पशीलता।[2] विलेयता की विभिन्नता के आधार पर अवक्षेपण,[3] केलासन,[4] आदि, विधियों से यौगिको को पृथक् किया जाता था और वाष्पशीलता के आधार पर आसवन,[5] शोषण,[6] आदि, विधियों से। क्रोमैटोग्राफीय विधियाँ यौगिको के अन्य भौतिक गुण-धर्मो की विभिन्नता का यौगिको के पृथक् करने में उपयोग करती है। इस प्रकार, इस नवीन दृष्टिकोण की महत्त्वपूर्ण उपादेयता स्पष्ट हो जाती है यद्यपि इस विधि के उपयोगों की अभी तक पूर्ण रूप से खोज नही हुई है। अब तक जिन विधियों का विकास किया गया है उनसे केवल सूक्ष्म अथवा अर्द्ध-सूक्ष्म-स्तर पर ही कार्य किया जाता है; तथापि इन विधियों का अनेक समस्याओ के सुलझाने में उपयोग किया जा चुका है—इससे बहुमूल्य धातुओ के विश्लेषण से लेकर विटामिनो की शुद्ध रूप मे तैयारी तक की गयी है।

इस पुस्तक के लेखको ने क्रोमैटोग्राफ़ी की कई विधियों का साथ-साथ विवेचन किया है और उन पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

1. Solubility
2. Volatility
3. Precipitation
4. Crystallization
5. Distillation
6. Desiccation

यह आशा की जाती है कि साधारण विद्यार्थी अथवा क्रोमैटोग्राफी क्षेत्र में नवीन शोधकर्ताओ को यौगिकों के पृथक् करने के पहले यौगिको का पर्याप्त ज्ञान होगा और उसकी पृष्ठभूमि में ये लोग निश्चय करेंगे कि क्रोमैटोग्राफीय विधियो का कितना उपयोग हो सकता है।

यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि शोनबीन (१) ने १८६१ मे सब से पहले छनने कागज के अधिशोषण का पदार्थो के पृथक् करने मे उपयोग किया, तथापि पोलैंड निवासी वनस्पति-वैज्ञानिक स्वेट[1] को क्रोमैटोग्राफीय विधि के आविष्कार का श्रेय दिया जाता है। आपने १९०६ में इस विधि का प्रथम सफल उपयोग किया। १९३१ तक इस शोध-क्षेत्र मे कोई प्रगति नही हुई, किन्तु इस वर्ष क्हून, विटरश्टाइन एवं लेडेरर (२) का इस ओर ध्यान आर्कषित हुआ। श्री एच० वाइल और टी० आई० विलियम्स (३) का कहना है कि डी० टी० डे महोदय ने १८९७ मे चूर्णित चूने के पत्थर के स्तम्भ मे पेट्रोलियम को ऊपर चढ़ा कर उसके कुछ प्रभाजन[2] प्राप्त किये। ये "स्तम्भ" विधिया है; काग़ज़-क्रोमैटोग्राम के आविष्कार का श्रेय कान्सडेन गार्डन, मार्टिन एव सिन्ज को प्राप्त है।

दुर्भाग्यवश, "क्रोमैटोग्राफी" शब्द उपयुक्त नही है ('क्रोम' के अर्थ रग और 'ग्राफ़ी' के अर्थ चित्रण होते है)। यद्यपि स्वेट ने रगीन यौगिको को अलग किया था और उनके विभिन्न रग स्तम्भ पर दिखाई देते थे, तथापि इस विधि का महत्त्व केवल रगो के पृथक् करने मे ही नही है। इस विधि मे दो विलायक-प्रणालियो (साधारणतया द्रव) द्वारा विलयशीलो का "विभाजन"[3] होता है। एक विलायक-प्रणाली स्थिर रहती है और दूसरी उसकी अपेक्षा चलती रहती है। कदाचित् "गतिज-विभाजन"[4] क्रोमैटोग्राफ़ी की अपेक्षा अच्छा शब्द है, पर क्रोमैटोग्राफ़ी शब्द का इतना अधिक उपयोग होने लगा है कि इस को बदलना सभव नही है।

इस विषय के व्यावहारिक पार्श्वों पर ध्यान देने के पहले यह अच्छा होगा कि उन विधियो का कुछ वर्णन किया जाये जो "क्रोमैटोग्राफ़ी" से सबधित है।

1. Tswett
2. Fractionation
3. Partition
4. Kinetic Partition

विभाजन क्रोमैटोग्राफ़ी

पाठक यह जानते होंगे कि जब विलयन को दूसरे अमिश्र्य[1] विलायक के साथ हिलाया जाता है तो उसमें जो अधिक विलेय होता है उसको कम विलेय पदार्थ से पृथक् किया जा सकता है। यदि इस विधि को दोहराया जाये तो अधिक विलेय पदार्थ और अधिक मात्रा मे पृथक् हो सकता है। साधारणतया विलयशील[2] की पृथक् होने वाली मात्रा इस विधि को दोहराने की संख्या पर निर्भर होती है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी मे इसी सिद्धान्त का उपयोग किया जाता है, किन्तु पृथक् करने की विधि को बार-बार करने के बजाय एक साथ ही करने की चेष्टा की जाती है। एक स्तम्भ मे ठोस पदार्थ को भर दिया जाता है और उसमे एक द्रव स्थिर अवस्था मे रहता है। मिश्रित[3] विलयशील स्तम्भ के ऊपर रख दिये जाते हैं और दूसरा द्रव स्तम्भ में बराबर बहने दिया जाता है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी का स्पष्ट मानसिक चित्र प्राप्त करने के लिए एक काल्पनिक प्रयोग सहायक होगा। कल्पना कीजिए कि दियासलाई की शकल के पात्र दो ढेरियों में इकट्ठा कर दिये गये हैं और ये ढेरियां पास-पास रखी है (देखिए चित्र १)। बायें हाथ की ढेरी में विलायक वि$_१$ भरा है; इस ढेरी को वि$_१$ कहा जायेगा। दूसरी ढेरी में विलायक वि$_२$ है और इसको वि$_२$ कहा जायेगा। कल्पना कीजिए कि ये दोनों विलायक आपस में मिश्र्य[4] नहीं है और इस प्रकार ये अमिश्र्य है। मान लीजिए कि (१) पात्रों का एक किनारा दूसरे पात्रों की ढरी के दूसरे किनारे को छू रहा है और (२) दोनों विलायकों के विलयशील एक दूसरी ढेरी के एक पात्र से दूसरे पास वाले पात्र में जा सकते हैं, किन्तु एक ही ढेरी के एक पात्र से दूसरे पात्र में नहीं जा सकते।

अब एक नवीन पात्र में विलायक वि$_२$ लीजिए जिसमें दो विलयशील क और ख इकाई सांद्रण[5] में है। इस पात्र को वि$_१$ ढेरी के ऊपर रख दीजिए और पूरी वि२ ढेरी को एक पात्र की ऊचाई के बराबर ऊपर से नीचे खिसकाइए। इस प्रकार

1. Immiscible
2. Solute
3. Mixed
4. Miscible
5. Concentration

दोनों ढेरियों के ऊपर वाले पात्रो में विलयशील अपने विभाजन-गुणको[1] के अनुसार पृथक् हो जायेगे। यदि क का विभाजन-गुणक $\frac{१}{१}$ है और ख का $\frac{१}{३}$, तो ऊपर वाले पात्रों में क का साद्रण वि$_{१}$ मे $\frac{१}{२}$ और वि$_{२}$ में $\frac{१}{२}$ होगा। इसी प्रकार ख का साद्रण वि$_{१}$ मे $\frac{१}{४}$ और वि$_{२}$ में $\frac{३}{४}$ होगा। नीचे वाले पात्रो मे केवल विलायक रहेगा। यह मान लिया गया है कि संतुलन बहुत जल्दी प्राप्त हो जाता है।
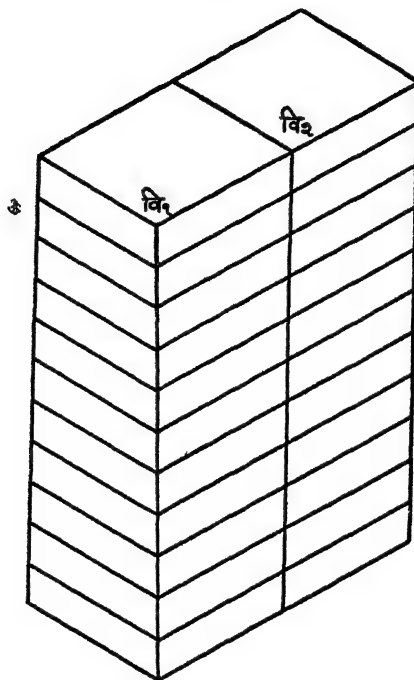
चित्र १—काल्पनिक प्रयोग—दियासलाई के समान पात्रों की ढेरी

अब दूसरे पात्र में शुद्ध विलायक वि$_{२}$ लीजिए और इसे वि$_{२}$ ढेरी पर रखिए। वि$_{२}$ ढेरी को दुबारा एक पात्र की ऊचाई के बराबर नीचे खिसकाइये। अब दोनों ढेरियों के ऊपर वाले दोनों पात्रों में क का सांद्रण $\frac{१}{४}$ होगा। ख का सांद्रण ऊपर

1. Partition Coefficient

वाले पहले वि$_1$ पात्र में $\frac{3}{16}$ और ऊपर वाले पहले वि$_2$ पात्र मे $\frac{3}{16}$ होगा; इसी प्रकार दूसरे वि$_1$ पात्र में $\frac{3}{16}$ और दूसरे वि$_2$ पात्र में $\frac{9}{16}$ होगा।

	वि$_1$ क	वि$_1$ ख	वि$_2$ क	वि$_2$ ख
1	1	1	1	3
2	9	27	9	81
3	36	324	36	972
4	84	2268	84	6804
5	126	10206	126	30618
6	126	30618	126	91854
7	84	61236	84	183708
8	36	78732	36	236196
9	9	59049	9	177147
10	1	19683	1	59049

चित्र २—काल्पनिक प्रयोग—दस प्रयोगों के बाद अंशलका सान्द्रण

जितनी बार चाहे इस विधि को दोहराया जा सकता है। यदि इस विधि को १० बार किया जाये तो प्रत्येक ढेरी के पहले १० पात्रो मे विलयशील होगे। यदि सांद्रणों को भिन्न रूप में व्यक्त किया जाय तो क अशों[1] के हर[2] १०२४ होंगे और ख अशों के हर १,०४८,५७६ होगे। इनके लव[3] चित्र २ में दिये हुए हैं।

1. Fractions
2. Denominators
3. Numerator

यदि प्रत्येक सतह की सापेक्ष मात्राओं को दशमलव रूप में लिखा जाये तो सारणी १ मे दी हुई संख्याएँ प्राप्त होंगी।

सारिणी १

सतह	क	ख
१.	०.००२	०.०००
२.	०.०१८	०.०००
३.	०.०७०	०.००१
४.	०.१६४	०.००९
५.	०.२४६	०.०३९
६.	०.२४६	०.११७
७.	०.१६४	०.२३४
८.	०.०७०	०.३००
९.	०.०१८	०.२२५
१०.	०.००२	०.०७५

जिन सतहों में क और ख का सांद्रण अधिकतम है, वे पृथक् हो चुकी है और ढेरियों के ऊपर वाले एवं निचले भाग में पृथक्करण होना शुरू हो गया है।

चित्र ३ में दिखाया गया है कि यदि इन प्रयोगों को २० या ३० बार किया जाये तो क्या नतीजा होगा। अब जो शकलें सामने आती है, वे विभाजन-स्तम्भ में होने वाली प्रक्रिया से कुछ-कुछ मिलती-जुलती है। यहाँ पर जो गणित अंक दिये गये हैं, वे मार्टिन एवं सिन्ज (४) के गणनात्मक "प्लेट" सिद्धान्त के अनुसार

है। इस में बताया गया है कि सांद्रण पट्टी[1] साधारणतया सामान्य "गलती" वक्र* के अनुरूप होती है। विलयशील के कुछ सूक्ष्म अंश ऊपरी सतह मे रहते है, किन्तु जैसे-जैसे उनकी पट्टी स्तम्भ के नीचे की ओर खिसकती है उनकी ऊपरी सतह में मात्रा अत्यत सूक्ष्म हो जाती है।
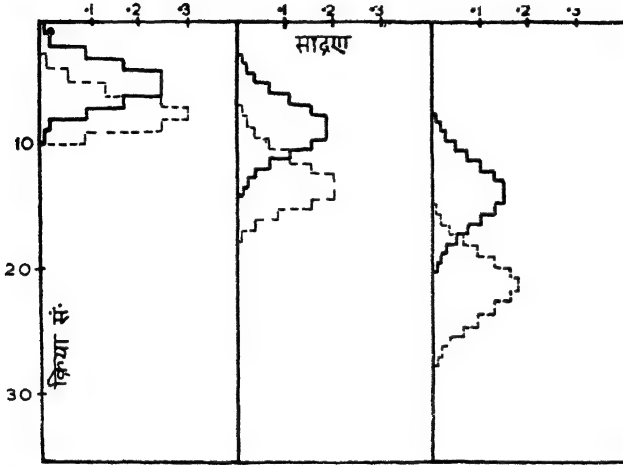
चित्र ३—काल्पनिक प्रयोग १०, २० एवं ३० क्रियाओं के बाद सान्द्रण

यह माना जा सकता है कि सिद्धान्त रूप से चलता हुआ विलायक विलयशीलों को अपने साथ ढेरी अथवा स्तम्भ में घसीटता रहता है, और इस घसीटने की गति साधारणतया उसके विभाजन-गुणक पर निर्भर होती है।

1. Band

*** मान लीजिए आप शीशे के छोटे गेंदों को सीधी निश्चित दिशा में अंगुली से ढकेल रहे है। यदि आपके पास १०० गेंद हैं तो सबके सब सीधी दिशा में नहीं जायेंगे। अधिकतर सीधी दिशा में जायेंगे और कुछ बायीं ओर तथा कुछ दायीं ओर। यदि आपका प्रत्येक गेंद एक स्थान पर जाकर जम जाता है तो खेल के अन्त में शीशे के गेंदों का ढेर साधारण रूप से उस ढेर के समान होगा जो कि चित्र ३ में दायीं ओर दिखाया गया है। इस वक्र को संख्या-शास्त्र में "ग़लती" वक्र** (error curve) **कहते हैं।**

एक और बात ध्यान देने लायक है। जैसे-जैसे ढेरियो में विलयशील नीचे खिसकता है उसका अधिकतम साद्रण कम होता जाता है, अर्थात् विलयशीलों की पट्टी चौडी होती जाती है। ढेरियो के लम्बी होने पर विसार[1] (प्रसार) भी अधिक होता है, पट्टी चौडी होने पर भी यही प्रभाव होता है। (हम लोगों ने यह मान लिया है कि एक ही ढेरी के पात्रो मे विलयशील एक पात्र से दूसरे मे नही जा सकता, अर्थात् ऊर्ध्वाधर धरातल मे कोई विसार नही होता।) प्रायोगिक कठिनाई यह है कि क्रोमैटोग्राफीय प्रयोगो मे यह प्रयत्न किया जाता है कि विभाजन-प्रक्रिया देर तक हो और इन प्रक्रियाओ की संख्या बढे, पर न तो पट्टी चौड़ी हो और न पृथक् होने वाले पदार्थो का साद्रण कम हो।

जिस काल्पनिक प्रयोग का ऊपर वर्णन किया गया है उससे विभाजन-क्रोमैटो-ग्राफी के आदर्श स्तम्भ का चित्र प्राप्त होता है। वस्तुत जब क्रोमैटोग्राफीय प्रयोग होता है तो प्रक्रिया एक के बाद दूसरी नही होती, अपितु वह बराबर होती चली जाती है। क्रोमैटोग्राफ़ीय स्तम्भ मे होने वाली इस प्रक्रिया का विस्तृत वर्णन बाद मे किया जायेगा।

अब व्यावहारिक बातों की ओर ध्यान दीजिए। मार्टिन एव सिन्ज (४) ने एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया जब उन्होने पानी से भीगी हुई सिलिका-श्लिषि[2] को स्तम्भ मे स्थिर रूप से रखा और क्लोरोफार्म को चलते हुए द्रव रूप मे प्रयुक्त किया। इस परिवर्तित विधि से बडे महत्त्वपूर्ण फल प्राप्त हुए। उन्होने २० सेमी०[3] लबी और १ सेमी० व्यास वाली शीशे की नली को स्तम्भ रूप मे प्रयुक्त किया। इस स्तम्भ मे ५ ग्राम सिलिका-श्लिषि, ३-५ मिलीमीटर जल और १० मिलीमीटर क्लोरोफार्म लिया गया। दो मिलीग्राम ऐसीटिल-एव-प्रोलीन हाइड्रेट और २ मिलीग्राम ऐसीटिल-डीएल-फिनाइल ऐलानीन के विलयन को स्तम्भ के ऊपर लगाया गया। शुद्ध क्लोरोफ़ार्म को स्तम्भ के ऊपर से बूद रूप में टपकाया गया और नीचे से बहिरागामी[4] विलायक को विभिन्न अंशो[5] मे इकट्ठा किया गया। विलयशीलों का पृथक्करण अच्छा हुआ। इन वैज्ञानिको ने अपने सिद्धान्त के अनु-

1. Diffusion
2. Silica gel
3. सेण्टीमीटर=सेंमी० Centimetre
4. Effluent
5. Fractions

सार विभाजन-गुणकों की गणना की। इस प्रकार जो मान प्राप्त हुए वे अधिक मात्रा मे विलायकों के ज्ञात विभाजन-गुणकों से काफी मिलते थे।

विलायक क्लोरोफार्म में जब १ प्रतिशत नार्मल ब्युटेनाल मिलाया गया, तब विलयशीलों का पृथक्करण और अच्छा हुआ। सिलिका-श्लिषि की तैयारी सावधानी से की गयी और उसे उदासीन मेथिल आरेंज के जलीय विलयन के साथ मिला कर स्तम्भ मे भरा गया। इसके कारण पीली पृष्ठभूमि मे पृथक् होने वाले विलयशीलों की हलकी गुलाबी पट्टिया स्तम्भ पर दिखाई देने लगी।

जलीय भाग को स्तम्भ में स्थिर रखने के लिए अन्य पदार्थो का भी उपयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मूर एव श्टाइन (५) ने एक बड़े बढिया तरीके से अमीनो-अम्लो को पृथक् किया। उन्होने स्टार्च को स्तम्भ मे भरा और ब्युटेनाल-प्रोपेनाल-अम्ल को विलायक रूप मे प्रयुक्त किया।

क्रोमैटोग्राफ़ी मे फेजों[1] को बदला भी जा सकता है, जैसे, क्लोरीनयुक्त रबर को ठोस पदार्थ के रूप में स्तम्भ मे लिया जा सकता है; इसमे अजलीय[2] विलायक स्थिर रहता है। जल को स्तम्भ मे बहने वाले द्रव की भाँति प्रयुक्त किया जा सकता है (६)।

विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की विधि मे प्रयुक्त अन्य वस्तुओ को भी बदलने का प्रयास किया गया है। इसमे मुख्य एव सरलतम विधि वह है जिसमे सिलिका-श्लिषि-जैसे ठोस पदार्थ से भरे स्तम्भ के स्थान पर कागज का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार, स्तम्भ को तैयार करने के बजाय कागज के ताव को इस्तेमाल करने से ही काम चल जाता है। कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (७) ने इस विधि का विकास किया और अब इसका बहुत उपयोग होने लगा है।

कागज़ क्रोमैटोग्राफ़ी

अभी जिन वैज्ञानिको का जिक्र किया गया है, उन्होने ज्ञात किया कि हवा से सतुलन में रहते हुए छनने कागज मे जितने जल का अधिशोषण[3] होता है, वह क्रोमैटोग्राफीय विधि को चलाने के लिए पर्याप्त है। इस विधि का इस प्रकार

1. Phases 2. Non-aqueous 3. Adsorption

प्रयोग किया गया—ह्वाटमैन न० १ छनने कागज की एक लंबी स्ट्रिप[1] ली गयी। इसके नीचे के सिरे से तीन इंच दूरी पर पेंसिल से एक लकीर खीची गयी। इस लकीर के बीच में परख-द्रव की इतनी छोटी एक बूद रखी गयी कि सूखने पर वह एक सेंटीमीटर व्यास से अधिक न हो जाये। परख-द्रव मे अमीनो-अम्ल[2] थे। लम्बी स्ट्रिप के जिस सिरे पर यह प्रक्रिया की गयी उसको एक ऐसे पात्र मे रखा गया जिसमे विलायक था। स्ट्रिप के दूसरे सिरे को एक उपयुक्त सहारे से लटका कर नीचे गिरा दिया गया। विलायक कागज की अति-सूक्ष्म केशनलियो[3] द्वारा कागज मे फौरन चढने लगता है। जब पात्र में धरे विलायक की सतह तक कागज़ पर विलायक चढ़ जाता है तो वह साइफन की प्रक्रिया से बराबर ऊपर चढ़ कर नीचे आता जायेगा, जब तक काग़ज पात्र के विलायक मे डूबा रहेगा। पात्र और स्ट्रिप दोनो को एक ढक्कनदार बड़े मर्त्तबान से ढॅक दिया गया। यदि ऐसा नही किया जाता, तो वाष्पशील विलायक अधिक मात्रा मे उड़ता रहता और कागज की स्ट्रिप पर उसकी मात्रा इच्छित अनुपात मे नही रहती; अत कागज़ पर लगे विलयशीलो का विलायक के साथ वाछित सापेक्ष चढ़ाव न हो पाता और विलयशील की बूँद एव विलायक की गति मे कोई निश्चित सबंध नही रहता।

रात भर तक विलायक को कागज मे चढ़ने दिया गया। दूसरे दिन प्रातःकाल स्ट्रिप के उस स्थान पर पेंसिल से निशान लगा लिया गया जहाँ तक विलायक चढ़ा था। तत्पश्चात् स्ट्रिप को ऊष्मक[4] मे सुखाया गया। ऊष्मक से सूखे हुए कागज़ को निकाला गया और उसके ऊपर निनहाइड्रिन का अभिषिञ्चन किया गया। तत्पश्चात् उसे पुनः ऊष्मक मे रख दिया गया। कुछ मिनटों बाद जब विलायक उड गया तो पता चला कि कागज पर लगे विलयशील के छोटे धब्बों ने निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया कर के रंगीन यौगिक बना लिये थे। इनको कागज की स्ट्रिप पर सरलता से पहचाना जा सकता था।

उपर्युक्त प्रयोग में विलायक फ़ेज ब्युटेनाल और स्थिर फेज जल था। इनके उपयुक्त सतुलन के लिए प्रयोग के पहले ही ब्युटेनाल को जल के साथ हिला कर

1. Strip　　2. Amino-acids
3. Capillaries　　4. Oven

ब्युटेनाल से संतृप्त[1] जल को मर्त्तबान के नीचे रख दिया गया था। इस प्रकार प्रयोग के दौरान में दोनों विलायको का अनुचित रूप से उड़ना रोका गया। प्रयोग से यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक अमीनो-अम्ल को एक मान से व्यक्त किया जा सकता था। यह मान विलायक के साथ अमीनो-अम्ल के सापेक्ष अग्रभाग[2] को बताता है। कान्सडेन, गार्डन और मार्टिन ने इस मान को "साअ"[3] कहा और इसकी निम्न-लिखित परिभाषा बतायी—

$$\text{सापेक्ष अग्रभाग साअ} = \frac{\text{स्ट्रिप पर मूलबिंदु से विलयशील की दूरी}}{\text{स्ट्रिप पर मूलबिंदु से विलायक की दूरी}}$$

इन वैज्ञानिकों ने ज्ञात किया कि दुबारा प्रयोग करने पर अमीनो-अम्लो के 'साअ' मान आपस मे काफी मिलते थे और विलायक को बदलने पर ये बदल जाते थे। चूकि 'साअ' मान प्रत्येक विलायक के लिए भिन्न होते थे, अतः दो विलायकों से प्रयोग करने पर साधारण अमीनो-अम्लो का लक्षण-निर्धारण पर्याप्त रूप से किया जा सकता था।

इस तथ्य के कारण इन वैज्ञानिकों ने कागज की स्ट्रिप के स्थान पर कागज़ के बड़े ताव को लिया और उस पर द्वि-आयामी[4] क्रोमोटोग्राम[5] बनाया। जिन लकीरों पर अमीनो-अम्लों की छोटी बूंदो को रखना था, उनको कागज़ के ताव के दोनो ओर दो आयामों मे नीचे के सिरे से लगभग तीन इच दूर लगाया गया। जहाँ पर ये दोनो लकीरे आपस में कटती थी वहाँ पर परख-द्रव की बूंद को रखा गया। पहले की भाँति, इस कागज़ के ताव के एक किनारे को एक विलायक भरे पात्र में डुबोया गया और यह विलायक बूंद के विलयशीलों को एक दिशा में काग़ज पर घसीटता रहा। जब इस दिशा मे विलायक पर्याप्त रूप से चढ गया, तब काग़ज के ताव को निकाल कर सुखा लिया गया। इसके बाद, दूसरे विलायक के साथ यही विधि दूसरे आयाम (पहली दिशा की अपेक्षा लब वाली दिशा) मे की गयी। इन प्रयोगों के फलस्वरूप जो क्रोमैटोग्राम बनता है, उसको "मानचित्र" कहा जा सकता है। इसको शीघ्रता से देख कर एक मिश्रण मे किसी अमीनो-अम्ल की उपस्थिति को जाना जा सकता है।

1. Saturated
2. Front
3. Relative Front=Rf
4. Two-dimensional
5. Chromatogram

कागज द्वारा विभाजन-क्रोमैटोग्राफी को सूक्ष्म-स्तर पर किया जाता है। स्तम्भ द्वारा इसे अर्द्ध-सूक्ष्म[1] स्तर पर किया जा सकता है। इन विधियों से पदार्थों को तो सरलता से पहचाना जा सकता है, किन्तु इनसे पदार्थों को पृथक् करके बडी मात्रा मे तैयार नही किया जा सकता। इस प्रकार, विभिन्न विलायकों में विभिन्न विलेयता का केवल यौगिको के पहचानने में उपयोग किया गया है। कागज-क्रोमैटोग्राफी की विधि बडी सस्ती है, अत. इसका बहुत अधिक उपयोग हुआ है। दूसरे अध्याय मे कागज-क्रोमैटोग्राफ़ी का विस्तृत वर्णन किया जायेगा। इसकी अद्‌भुत उपयोगिता का एक उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

यदि अमीनो-अम्लो के मिश्रण मे कोई पेप्टाइड मिला हुआ है तो कागज के पूरे ताव मे आरभ-रेखा पर परख-द्रव की छोटी-छोटी बूँदो को लगा दिया जाता है। जब काग़ज पर विलायक चढ़ जाता है तो इसे सुखा कर क्रोमैटोग्राम बना लिया जाता है। कागज़ के दोनो बाहरी छोरो पर केवल अतिम दो लकीरो के धब्बो की निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया की जाती है। अब विलायक के चढने की दिशा से लब रूप मे केवल दो निनहाइड्रिन-पेप्टाइड धब्बो को बाहर रखते हुए कागज पर पेंसिल से दोनो ओर रेखाएँ खीच ली जाती है। यहाँ पर से कागज को काट कर एक स्ट्रिप प्राप्त की जाती है; इसमे केवल पेप्टाइड के ही धब्बे होते है। अब किसी उपयुक्त विलायक से इस स्ट्रिप मे लगे विलयशीलो का निष्कासन[2] किया जाता है। विलायक धीरे धीरे स्ट्रिप मे से चढ कर किसी एक पात्र मे बूद बूद टपकता रहता है। तत्पश्चात् इस पात्र के विलायक को उडा दिया जाता है। सूखने पर जो पदार्थ बच रहता है उसका हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के साथ जल-विश्लेषण[3] किया जाता है। तत्पश्चात् हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को उडा कर उसमें पानी भरा जाता है। अब जो विलयन प्राप्त होता है उसको पुन कागज के ताव पर लगाया जाता है और पेप्टाइड मे उपस्थित अमीनो-अम्लो की क्रोमैटोग्राफीय विधि से फिर पहचान की जाती है। इस विधि को और भी सूक्ष्म-स्तर पर केवल एक या दो दिनों मे किया जा सकता है।

1. Semi-micro
2. Elution
3. Hydrolysis

विभाजन क्रोमैटोग्राफ़ी को प्रभावित करनेवाली दशाएँ[1]

अभी तक केवल विभाजन-क्रोमैटोग्राफी का वर्णन किया गया है, जिसमें विभाजन केवल दो अमिश्र्य फेजो के बीच मे होता है और स्थिर फेज को एक ठोस पदार्थ के साथ स्तम्भ मे भर कर रखा जाता है। अब ध्यान देने योग्य बात यह है कि ठोस पदार्थ अपने अधिशोषक गुणो के कारण क्रोमैटोग्राफीय विधि में दखल दे सकता है। वस्तुत', कागज-क्रोमैटोग्राफ़ी मे, जहाँ जल द्रव-फेज मे स्पष्ट रूप से सामने नही आता, अधिशोषण के कारण कुछ प्रयोग खराब हो जाते है।

कुछ अनुसधान-कर्त्ताओं का कहना है कि क्रोमैटोग्राफी मे अधिशोषण के कारण पदार्थ पृथक् होते है। टिजेलियस के काठकोयले[2] के चूर्ण से भरे स्तम्भ और स्टार्च एव सिलिका-श्लिषि से भरे कुछ स्तम्भो में ऐसा जान पड़ता है कि अधिशोषण का ही क्रोमैटोग्राफीय विधि पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। किन्तु उन स्तम्भो मे जिनमे—(क) स्थिर फेज केवल द्रव रूप मे ही नही, अपितु ठोस फेज मे भी रहता है; और (ख) ठोस तथा द्रव फेजो की कुछ जटिल अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती है पर वे स्थिर "फेज" मे ही बने रहते है, मार्टिन (८) द्वारा प्रतिपादित "विभाजन" के विचार को गणनात्मक रूप से क्रोमैटोग्राफीय विधि मे लगाया जा सकता है।

आयन-विनिमय[3] क्रोमैटोग्राफी मे भी दो फेज होते है—(क) चलता हुआ जलीय फेज, और (ख) स्थिर जलीय आयन-रेजिन[4] फेज़। यहाँ पर यह बतलाना उचित होगा कि सक्रिय काठकोयले (९) से गैसों और वाष्पो को पृथक् करने के लिए क्रोमैटोग्राफ़ीय विधियो का प्रयोग किया गया है। यदि हम "विभाजन" के विचार का विस्तार करे और "द्रव" फेज के स्थान पर "गैस" फेज की कल्पना करें, तो इसका वर्गीकरण "गतिज-विभाजन" मे होना चाहिए।

अन्य कोमैटोग्राफ़ीय विधियां

अभी क्रोमैटोग्राफ़ी संबंधी जिन विचारो का वर्णन किया गया है उनसे ऐसी अन्य विधियो का भास होता है जिनमे पृथक्करण केवल दो विलायकों के विभाजन पर निर्भर नही रहता।

1. Factors
2. Charcoal
3. Ion-exchange
4. Ion-resin

जिस आदर्श प्रयोग का इस अध्याय में पहले वर्णन किया गया है, उसके मुख्य लक्षण ये है—प्रथम, एक स्थिर फ़ेज के ऊपर दूसरे फ़ेज का चलना; और दूसरा, दो विलयशीलो के विभाजन-गुणको का अतर। यदि "फ़ेज" के विचार को विस्तृत करके उसमें उन सयुक्त[1] प्रणालियो को भी शामिल किया जाये जिनमें विलयशील को उलट कर लगाया जा सकता है, तो ये मुख्य लक्षण तब भी रह सकते है। इस प्रकार, "फ़ेज" दो चीजो से बनता है—विलायक+ठोस अवशोषक।[2] स्थिर फ़ेज मे केवल ठोस अवशोषक रह सकता है। इस दशा मे "विभाजन-गुणक" के स्थान पर दो विलायक प्रणालियों मे "वितरण-अनुपात" का प्रयोग होना चाहिए। अब यह स्पष्ट हो गया होगा कि दो विलायक प्रणालियो का अमिश्र्य होना आवश्यक नही है।

"अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफ़ी" एवं "आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफ़ी" दोनो शब्द काफी प्रचलित है; इनमे अंतर यही है कि आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफ़ी मे अमिश्र्य विलायको का पृथक्करण केवल विभाजन पर ही आधारित नही होता। कुछ ऐसे उदाहरण ज्ञात है जिनमे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पृथक्करण "विभाजन" अथवा "अधिशोषण" पर आधारित है। पर अभी तक जो बताया गया है उससे ऐसे "गतिज-विभाजन" की कल्पना की जा सकती है जिसमे विभाजन, अधिशोषण एवं आयन-विनिमय तीनों का सम्मिश्रण हो; इसी विधि को क्रोमैटोग्राफी कहते है।

अधिशोषण क्रोमैटोग्राफ़ी

साधारणतया, अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी में ऐसे स्तम्भ का प्रयोग होता है जिसमे चलते हुए द्रव फ़ेज से भीगे बारीक अधिशोषक-चूर्ण का प्रयोग होता है। पृथक् किये जाने वाले पदार्थ को उपयुक्त विलायक मे घोला जाता है और इसको स्तम्भ पर लगा दिया जाता है। स्तम्भ पर जितना पदार्थ लगाया जाता है वह स्तम्भ मे अधिशोषित हो सकने वाले पदार्थ की अपेक्षा कम होता है। जब उपयुक्त मात्रा में मिश्रण को ऊपर लगा दिया जाता है, तो शुद्ध विलायक को बूँद-बूँद करके स्तम्भ पर टपकाया जाता है और इसे स्तम्भ मे बहने दिया जाता है। विभाजन-क्रोमैटो-

1. Composite 2. Absorbent

ग्राफी के स्तम्भ में होने वाली विधि इस स्तम्भ मे होने वाली विधि से कुछ मिलती-जुलती है। पहले की भाँति, बहते हुए विलायक के कारण विलयशील धीरे-धीरे स्तम्भ मे पृथक् होते जाते है।

उदाहरणार्थ, स्वेट ने खड़िया के बारीक चूर्ण को स्तम्भ मे भरा और पेट्रोल-ईथर मे हरी पत्तियो के रग-द्रव्य[1] के सार को उसके ऊपर लगाया। रगद्रव्य कई रगीन पट्टियों[2] मे पृथक् हो गया। स्वेट ने शीशे के स्तम्भ मे से खड़िया के स्तम्भ को धीरे से बाहर निकाला और चाकू से विभिन्न पट्टियो को काट लिया। रंगीन द्रव्यो को बाद मे खडिया से निष्कासित कर लिया गया।

अधिशोषण विधि के उपयोग मे कई कठिनाइयाँ है—अधिशोषण बहुत धीरे हो सकता है, अपूर्ण भी हो सकता है और कभी-कभी स्तम्भ का पदार्थ बहते द्रव पर अधिशोषित हो सकता है। इन कारणो से पृथक्करण पूर्ण नही होता और विलयशील पूरी मात्रा मे प्राप्त नही होते। एक और कठिनाई यह है कि समान गुण-धर्म वाले अधिशोषक के नमूने मुश्किल से मिलते है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि एक ही ढेर वाले पदार्थ से बनाये गये विभिन्न स्तम्भो मे भी अतर होता है। सौभाग्यवश, अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी की विधियाँ अधिशोषक एव विलायक के साथ विशिष्ट नही होती। फलत, विलयशीलों के किसी मिश्रण को पृथक् करने के लिए कई "विलायक-प्रणालियो" को बार-बार करना पडता है जब तक कि ठीक अधिशोषक और उसके लिए उपयुक्त विलायक न ज्ञात हो जाये। उदाहरणार्थ, जेखमाइस्टर (१०) ने जैंथोफ़िल[3] के पृथक्करण के लिए निम्नलिखित प्रणालियों को ज्ञात किया—(क) मैगनीसया (अधिशोषक) और लाइट पेट्रोलियम + २५ प्रतिशत ऐसीटोन (विलायक); और (ख) शर्करा (अधिशोषक) और लाइट पेट्रोलियम + १ प्रतिशत प्रोपेनाल (विलायक)। इन दोनो प्रणालियों में पृथक्करण हो जाता है, किन्तु पृथक् होने वाले पदार्थो का क्रम भिन्न होता है। कैरीटोन के परिमापन[4] के लिए जेखमाइस्टर ने कैलसियम हाइड्राक्साइड के स्तम्भ का प्रयोग किया; इसमे भी विलायक लाइट पेट्रोलियम रखा गया और इसमे अधिशोपक के अनुसार ०-३ प्रतिशत तक ऐसीटोन मिला दिया गया।

1. Pigment
2. Bands
3. Xanthophyll
4. Estimation

अग्रभागीय विश्लेषण[1]

इस विशेष प्रकार की अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफी का टिज़ेलियस ने विकास किया। इसमे अधिशोषण प्रक्रिया के अतिरिक्त कुछ दशाओं मे अन्य प्रक्रियाएँ भी होती है।

अभी तक जिन विधियो का वर्णन किया गया है, उनमें विलयशीलों का मिश्रण स्तम्भ के ऊपर एक पतली पट्टी के रूप मे लगा दिया जाता है। स्तम्भ पर विलयशील रहित विलायक के बहने के कारण विलयशील धीरे-धीरे पृथक् हो जाते है। यदि बहिरागामी के पहले कुछ नमूनो का परीक्षण किया जाये तो ज्ञात होगा कि सर्व-प्रथम उनमें केवल शुद्ध विलायक ही बाहर आता है। तत्पश्चात् विलयशील की पहली पट्टी प्रकट होती है और शीघ्र ही उसका साद्रण अधिकतम हो जाता है। क्रमश., विलायक शुद्ध रूप मे बाहर निकलने लगता है। यह प्रक्रिया विलयशील की प्रत्येक पट्टी के उपरान्त होती है।

अग्रमागीय—विश्लेषण मे स्तम्भ का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जाता है। विलय-शीलो का मिश्रण विलायक मे रहता है और इसे स्तम्भ पर बराबर डाला जाता है। स्तम्भ से बाहर आने वाले द्रव (बहिरा-गामी) के पहले कुछ अंश केवल शुद्ध विलायक रूप मे होते है। जब स्तम्भ मे काफी देर तक मिश्रण बह चुकता है और स्तम्भ संतृप्त हो जाता है तब ऊपर से डाले जाने वाले मिश्रण का विलयन और बहिरागामी एक ही होते है। इन दोनों दशाओ के बीच में विभिन्न विलयशील विभिन्न मात्रा में स्तम्भ पर अधिशोषित होते है। बहिरागामी में सर्वप्रथम वह विलयशील आता है जिसका स्तम्भ पर अधिशोषण न्यूनतम हुआ है।
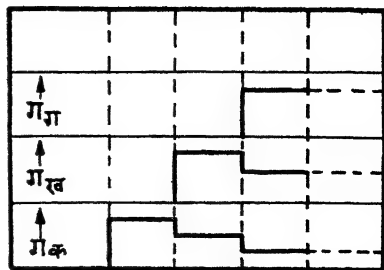
चित्र ४—अग्रभागीय विश्लेषण विलयशीलों का बहिरागामी में क्रमपूर्वक प्रकट होना

1. Frontal Analysis

जब विलाबक के बहने का वेग काफी कम होता है और स्तम्भ काफ़ी लबा होता है तो सतुलन अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती है और बहिरागामी में विलयशील क्रमिक रूप से[1] आते है। यदि तीन विलयशीलो—क, ख और ग—के अधिशोषक गुण-धर्म (ग) के लिए अधिकतम एव (क) के लिए न्यूनतम है तो बहिरागामी में उनके सांद्रण चित्र ४ की भांति प्रकट होंगे।

अग्रमार्गीय-विश्लेषण की विधि का लाभ यह है कि विलयशीलों के मिश्रण का लक्षण-निर्धारण एवं परिमापन उस दशा मे भी हो सकता है जब स्तम्भ पर अधिशोषण लगभग अपलटनीय[2] हो। फलत:, इससे उन विलयशीलों का भी पृथक्करण हो सकता है जिनका पृथक्करण आणविक जटिलता के कारण अन्य विधियों से सम्भव नही है।

विस्थापन क्रोमैटोग्राफ़ी

यह क्रोमैटोग्राफीय विश्लेषण की वह अति उपयोगी विधि है जिसमें स्तम्भ में आयन-विनिमय पदार्थ रहते है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की भाँति पृथक् किये जाने वाले मिश्रण की थोड़ी मात्रा स्तम्भ के ऊपर लगा दी जाती है। किन्तु इसमे शुद्ध विलायक द्वारा स्तम्भ के निष्कासन के बजाय "प्रस्फुटी" विलयन[3] का उपयोग किया जाता है। इस विलयन में एक ऐसा विलयशील होता है जो स्तम्भ पर मिश्रण के किसी भी विलयशील की अपेक्षा अधिक मजबूती से अधिशोषित होता है। अत:, जैसे-जैसे वह स्तम्भ पर बहता है, वह अधिशोषित विलयशीलों को "विस्थापित" करता जाता है। प्रस्फुटी विलयन वस्तुत: एक पिस्टन की भाँति काम करता है जो विलयशीलों की पट्टियों को क्रम-पूर्वक धीरे-धीरे नीचे ढकेलता रहता है। जो विलयशील स्तम्भ मे न्यूनतम शक्ति से अधिशोषित होता है वह सबसे पहले विस्थापित होता है। स्तम्भ पर पहले तो मिश्रण उसी रूप में ही थोड़ी दूर तक चलता है ; बाद मे, शुद्ध पट्टियों के रूप मे वह धीरे धीरे अलग हो जाता है। ये पट्टियाँ एक दूसरे के संपर्क में रहती है। व्यवहार में यह देखा गया है कि वे

1. Stepwise
2. Irreversible अप्रतिवर्त्य
3. Developing solution

किनारे पर एक दूसरे के ऊपर ढँक जाती है, किन्तु प्रायोगिक विधि में सुधार करके इस ढंक जाने (आच्छादन) को कम किया जा सकता है।

ऐसे स्तम्भों में से निष्कासक के अंशों को क्रमपूर्वक एकत्रित किया जाता है। जब प्रस्फुटी विलयशील ही बाहर निकलने लगता है तो समझ लिया जाता है कि स्तम्भ प्रस्फुटी विलयशीलो से सतृप्त हो गया है। ऐसे संतृप्त स्तम्भ पर जब ऐसे विलयन की प्रक्रिया की जाती है जिसमे दूसरे चार्ज वाला आयर्न होता है तो वह स्तम्भ को फिर से ठीक कर देता है। बाद मे शुद्धि के लिए इसे आसुत जल से धो दिया जाता है। इस प्रकार, इस स्तम्भ का कई बार प्रयोग हो सकता है, किन्तु यह प्रक्रिया कितनी बार हो यह इस बात पर निर्भर है कि स्तम्भ में प्रयुक्त रेजिन का रासायनिक स्थायित्व कितना है।

चूकि इस विधि मे विलयशीलों की पट्टी एक दूसरे से किनारे पर ढँकी (आच्छादित) रहती है, अत. इससे परिमाणात्मक[1] पृथक्करण नहीं होते। आयन-विनियम स्तम्भो पर विस्थापन की उपयोगिता यह है कि इनमें विलयशीलो की काफी अधिक मात्रा ली जा सकती है। इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि आजकल ऐसे रेज़िन प्राप्य है जो शुष्क अवस्था मे १ से ५ मिलीसमतुल्य[2] प्रति ग्राम भार तक पदार्थो का अधिशोषण कर सकते हैं। अतः यह विधि उन रासायनिक कार्यो के लिए बड़ी उपयोगी है जिनमे ०.१ ग्राम या इससे अधिक पदार्थों की तैयारी करनी हो।

जल को मृदु बनाने के लिए जियोलाइट का उपयोग होता है। इसमे जो सिद्धांत लगता है, वही आयन-विनिमय क्रोमैटोग्राफ़ी मे भी उपयुक्त हो सकता है। वस्तुतः रेज़िन जियालाइटो की नकल करके ही बनायी गयी । जब इनका क्रोमैटोग्राफ़ी में उपयोग विदित हुआ तो विशेष प्रकार के रेज़िनों का विकास किया गया। अब धन-आयन एवं ऋण-आयन विनिमय रेज़िन काफी मात्रा में व्यापारिक रूप से उपलब्ध है। ये रासायनिक रूप से स्थायी होती है और इनके अधिशोषक गुण-धर्म काफी विशिष्ट होते है। इनमे कुछ रेज़िन ऐसी भी होती हैं जो केवल एक प्रकार का ही कार्य[3] कर सकती है। ऐसी रेजिनो मे केवल एक

1. Quantitative
2. Milli-equivalents
3. Monofunctional

प्रकार का रासायनिक समूह होता है जो आयन-विनिमय प्रतिक्रिया मे भाग लेता है।

क्रोमैटोग्राफ़ीय विधियों के सिद्धान्त

अब तक तीन प्रकार की क्रोमैटोग्राफीय विधियों मे भेद किया गया है—विभाजन, अधिशोषण और आयन-विनिमय। क्रोमैटोग्राफीय स्तम्भों पर कार्य करने की भी तीन विधियाँ बतायी गयी हैं—निष्कासन, अग्रभागीय-विश्लेषण और विस्थापन। फलतः, क्रोमैटोग्राफ़ीय विधियाँ ९ प्रकार की होती हैं। इनमें से कुछ विधियों पर अभी अन्वेषण कार्य नहीं हुआ है।

अब प्रश्न यह उठता है कि किसी मिश्रण को पृथक् करने के लिए इनमें से कौन-सी विधि चुनी जाये। यह चयन पृथक् किये जाने वाले विलयशीलों की प्रकृति पर निर्भर होता है और इस चयन मे अनुसधान-कर्ताओं द्वारा किया पूर्व कार्य सिद्धात की अपेक्षा अधिक सहायक होता है।

क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि के लिए गणित सिद्धांत प्रतिपादित करने के लिए कई प्रयास किये गये हैं। इस पुस्तक के लेखकों को ऐसा कोई भी प्रयास ज्ञात नही है जिसमें इन विधियों के सारे ज्ञात तथ्यो की पर्याप्त रूप से सैद्धान्तिक विवेचना की गयी हो। क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि काफ़ी जटिल है और इसके गणित-विवेचन के लिए कुछ बातें मान ली जाती हैं। किन्तु इनसे जटिल विधि को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं किया जा सकता। उदाहरणतया, इन गणित सिद्धान्तो मे क्रोमेटोग्राफ़ीय विधि में होने वाले विसार[1] (प्रसार) के महत्त्व को भुला दिया जाता है। कुछ सैद्धान्तिक प्रतिपादनों में कल्पना की जाती है कि ठोस अधिशोषक मे विलयशील का विसार तुरन्त हो जाता है ; कुछ विवेचनो मे ऐसा मान लिया जाता है कि पूरे स्तम्भ मे विसार इतने धीमे होता है कि उसको गौण समझा जा सकता है। ये दोनो अनुमान ठीक नही है, स्पष्ट रूप से वे परस्पर विरोधी दिखाई देते हैं।

एक बात और है। अभी तक जितने सिद्धान्त प्रतिपादित हुए हैं उनमे अधिशोषण होते समय ठोस अधिशोषक के आयतन मे परिवर्त्तन को भुला दिया जाता है। इसके कारण स्तम्भ में बहते हुए फ़ेज की गति पर काफी प्रभाव पड़ता है और इससे कभी-कभी स्तम्भ की समांगता[2] भी नष्ट हो जाती है।

1. Diffusion 2. Homogeneity

इन कारणो से यहाँ पर क्रोमैटोग्राफीय विधियों का सैद्धान्तिक विवेचन नहीं किया गया है। यहाँ जहाँ पर सैद्धान्तिक विचारो से प्रायोगिक कार्य में सहायता मिलती है वहाँ पर उपयुक्त रूप से उनका समावेश कर दिया गया है। जो पाठक क्रोमैटोग्राफी के साधारण सिद्धान्त जानना चाहे वें कृपया Discussions of the Faraday Society No. 7 (Gurney & Jackson, London, 1949) को पढ़े। इसमें क्रोमैट्रोग्राफ़ीय विधियों के सैद्धान्तिक विवेचन में कठिनाइयों और अनिश्चित दशाओं का सुदर प्रतिपादन किया गया है।

अध्याय २

काग़ज़-क्रोमैटोग्राफ़ी

कान्सडेन, गार्डन एव मार्टिन (७) द्वारा १९४४ मे प्रकाशित शोध-निबंध वस्तुतः महान् शोध-कार्य है। ये वैज्ञानिक प्रोटीन के आशिक जल-विश्लेषण[1] से प्राप्त पदार्थों का अन्वेषण कर रहे थे और इस प्रकार यह गवेषणा अमीनो-अम्लों और पेप्टाइडो से सबधित थी। इन व्यक्तियों ने जिस विधि का विकास किया, उसमे अभी तक कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हुआ है। अतः उनके शोध-निबंध का यहाँ वर्णन किया जायेगा। इसके पश्चात् उनकी विधि में हुए महत्त्वपूर्ण परि-वर्तनों पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

इन वैज्ञानिकों ने सरल उपकरण का उपयोग किया। मर्त्तबान के स्थान पर एक नाली-नली[2] (नालियो में प्रयुक्त थोडे मोटे नल) का उपयोग किया गया। इसको सीस पात्र[3] में खड़ा किया गया। पात्र में द्रव पदार्थ था जिससे पर्याप्त रूप से जलीय फेज बनता था। इस नली के ऊपर वाले भाग को घिस कर चपटा कर लिया गया और उसे शीशे की पतली चद्दर के छोटे टुकड़े से ढक दिया गया। इस नली के ऊपरी भाग मे जो चौड़ा हिस्सा होता है उसमे आसानी से शीशे का लंबा प्याला[4] रखा जा सकता था। यह प्याला विशेष रूप से बनाया गया था। शीशे की $\frac{1}{2}$ इंच व्यास की नलिका ली गयी और उसके उपयुक्त लबे टुकड़े को काट कर दोनों सिरो को शीशा पिघला कर बन्द कर दिया गया; तत्पश्चात् इस नली के लंबे भाग की एक सतह को घिसा गया। इससे नली धीरे-धीरे कमज़ोर होती गयी और अत में वह खुल गयी—इस प्रकार लबे प्याले का ऊपरी खुला भाग बन गया। चित्र ५ ख और ५ ग में शीशे (काँच) की वे छड़े दिखायी गयी है जिन पर कागज़ लटकाया गया था। यदि इन छड़ो का उपयोग नहीं किया जाता तो कागज़ प्याले

1. Partial hydrolysis
2. Drain-pipe
3. Lead dish
4. Trough कूंडा, द्रोणी।

के किनारो के बल सीधा लटकता और इस प्रकार साइफ़न प्रक्रिया होने से प्याले का विलायक बाहर आ जाता। इससे विलायक व्यर्थ मे बर्बाद होता और कदाचित् कागज़ पर आवश्यकता से अधिक विलायक आ जाता।
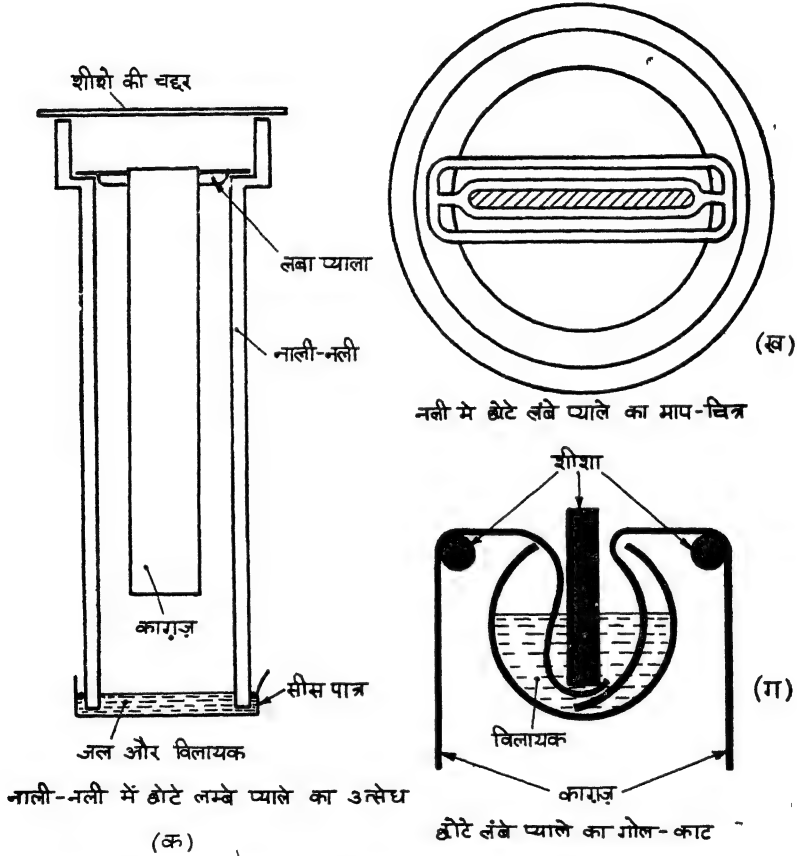
चित्र ५—कान्सडेन, गार्डन, एवं मार्टिन द्वारा उपयुक्त उपकरण की मूल व्यवस्था

शीशे के लबे प्याले के व्यास से कुछ छोटी एक चौड़ी शीशे की पट्टी का भी उपयोग किया गया। इसकी लम्बाई नाली-नली की अपेक्षा कुछ छोटी थी। इनका काम कागज़ की पट्टी को ठीक प्रकार से सीधा रखना था (देखिए चित्र ५ ग)।

कागज-क्रोमैटोग्राम के लिए व्हाटमैन[1] नं० १ छनने कागज की स्ट्रिप का उपयोग किया गया। यह १.५ सेंमी० या इससे कुछ अधिक चौडी थी और २०-५६ सेंमी० तक लबी थी। पट्टी के निचले भाग से ७.५ सेंमी० की दूरी पर पेंसिल से एक लकीर खींची गयी और इसके ऊपर २ से ४ माइक्रोलिटर की एक बूंद रखी गयी। इसमें प्रत्येक अमीनो-अम्ल की मात्रा ५ से १५ माइक्रोग्राम तक थी। बूॅद को लगाने की विधि यह थी —

परख-द्रव[2] को एक केश-नलिका[3] मे थोड़ा भर लिया गया और इसके बाहर लगे द्रव के छनने कागज से सोख लिया गया। तत्पश्चात् इस केश-नलिका को स्ट्रिप पर खिची पेंसिल की लकीर (आरम्भ-रेखा) से धीरे से छुआ दिया गया। इन बूदों को कागज़ की स्ट्रिप के निचले भाग पर इस कारण नही लगाया गया क्योंकि इससे विलायक के सम रूप से बहने में बाधा पडती।

कागज की पट्टी के ऊपरी भाग को शीशे के लबे प्याले में रखे विलायक में डुबो कर शीशे की छड़ से दबा दिया गया। अब प्याले और कागज को नाली-नली मे लाया गया। इसकी तैयारी पहले ही कर ली गयी थी—विलायक द्वारा संतृप्त जल से भरे सीस-पात्र[4] मे शीशे (काँच) की चद्दर से ढक कर इसे पहले ही रखा जा चुका था। जलीय फ़ेज़ का वर्णन बाद मे किया जायेगा। प्याले और कागज़ को नाली-नली में रख कर शीशे की चद्दर ढक दी गयी।

विलायक एक दिन मे ३० से ५० सेंमी० तक नीचे दौड आता था। इसका वेग ताप अथवा विलायक की प्रकृति पर निर्भर रहता है। जब विलायक उपयुक्त दूरी तक कागज़ पर नीचे दौड आया तो कागज की पट्टी को बाहर निकाल कर १००° पर सुखा लिया गया। तत्पश्चात् निनहाइड्रिन विलयन (ट्राइकीटो हाइड्रिनडीन हाइड्रेट की ०.१ नार्मल ब्युटेनाल मे) की फुहार छोड़ी गयी और इसे सुखा लिया गया। अब की बार इसे पाँच मिनट तक गरम किया गया जिससे अमीनो-अम्ल और निनहाइड्रिन की प्रक्रिया से रंगीन धब्बे पूर्ण रूप से प्रस्फुटित[5] हो जाये। फुहार छोड़ने के लिए शीशे के एक साधारण फव्वारे से अच्छी तरह काम चल जाता है।

1. Whatman (No. 1 Filter-paper) 2. Test Liquid
3. Capillary 4. Lead Tray
5. Develop

निनहाइड्रिन के साथ अमीनो-अम्लों के अधिकतर रंग बैंजनी-भूरे[1] रंग के होते हैं; किन्तु कुछ का लक्षण-निर्धारण[2] केवल रंग द्वारा ही हो जाता है। उदाहरणार्थ, प्रोलीन और हाइड्राक्सी प्रोलीन पीले धब्बे बनाती है; ऐस्परागीन बादामी-भूरे रग का धब्बा बनाती है; फिनाइल-ऐलानीन, टायरोसीन और हिस्टीडीन के धब्बों में लाली नही होती, जिनके कारण ये बैजनी-भूरे की अपेक्षा नीले-भूरे रंग के कारण पहचानी जा सकती है।

धब्बो का लक्षण-निर्धारण साअ (देखिए अध्याय १) मानो से भी किया जा सकता है। मार्टिन एवं सिन्ज ने विभाजन स्तम्भ (४) में लगे सूत्र से निम्नलिखित सूत्र बनाया—

$$व = \frac{क्षवि}{क्षज} \left(\frac{१}{साअ} - १ \right)$$

जहाँ, व=विभाजन - गुणक,

क्ष वि=विलायक फ़ेज के गोल-काट का क्षेत्रफल, और

क्ष ज=जल फेज के गोल-काट का क्षेत्रफल।

क्रोमैटोग्राम में विलायक फेज एव जल-फेज़ के अनुपात को $\frac{क्षवि}{क्षज}$ के बराबर मान लिया गया। अमीनो-अम्लों के कई मिश्रण बनाये गये। इनमे ग्लाइसीन को भी मिला लिया गया। अब इन मिश्रणो के कई क्रोमैटोग्राम प्राप्त किये गये। काग़ज़ की जलीय मात्रा का मान ऐसा मान लिया गया जिससे ग्लाइसीन का विभाजन-गुणक उतना आये जितना प्रयोग द्वारा प्राप्त होता है। अब इसी मान को लेकर अन्य अमीनो-अम्लो के विभाजन-गुणको की भी गणना की गयी। ज्ञात हुआ कि उपर्युक्त सूत्र से गणित विभाजन-गुणकों और वास्तविक विभाजन-गुणकों मे सतोषजनक समता थी। इस प्रकार निम्नलिखित बाते निश्चित की गयी—

(क) प्रयोग दोहराने पर साअ मान पुनःशील (पुनरुत्पादनीय)[3] पाये गये,

(ख) ताप के कारण साअ मानों में अधिक अतर नही पड़ा, और

(ग) यदि अधिक मात्रा में अमीनो-अम्लों के वितरण से विभाजन-गुणक

1. Purple grey 2 Characterisation

3. Reproducible

ज्ञात किये जायें, तो उनके मान, साम्र मानो से गणित विभाजन-गुणको से काफ़ी मिलते थे।

इन वैज्ञानिकों के शोध-निबध के अन्य महत्त्वपूर्ण विचार ये है—

(क) निनहाइड्रिन से कागज़ पर अंगुली के चिह्नों को प्रस्फुटित किया जा सकता है।

(ख) यदि अधिक साद्रण वाले विलयनों को कागज़ पर लगाया जाये तो इससे धब्बों के रंग और उनकी शकल मे अतर पड सकता है।

(ग) कागज मे ताँबे के रूप मे अशुद्धता होती है। कुछ विलायकों से ताँबा हलके गुलाबी रग का धब्बा बनाता है। इस धोखे देने वाले धब्बे से सावधान रहना चाहिए। फ़ीनोल-अमोनिया विलायक से यह गहरे रग की एक पट्टी बनाता है जो बढ़ते हुए विलायक के अग्रभाग से थोड़ी पीछे होती है।

(घ) कार्बनिक अम्लों के अमोनियम लवणों और अन्य कई भस्मो[1] से निन-हाइड्रिन प्रतिक्रिया करती है।

(ङ) विलायक के कागज़ पर दौड़ते समय यदि ताप मे परिवर्तन हो तो इससे दोनो फेजों की पारस्परिक विलयता पर प्रभाव पडता है। यदि यह ताप-परिवर्तन काफ़ी अधिक हो तो कभी-कभी विलायक मे से जल पृथक् हो जाता है और जल के कारण क्रोमैटोग्राम के धब्बे कागज़ पर फैल कर धुधले पड जाते है।

इस शोध-निबंध मे इन वैज्ञानिको ने "द्वि-आयमी" क्रोमैटाग्रामो के सफल प्रयोगो का भी वर्णन किया है। इनका वर्णन इस अध्याय के बाद मे किया जायेगा।

उपकरण में परिवर्तन

कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन ने कॉच के जिस लबे प्याले का उपयोग किया, उसको बनाने मे काफी दक्षता की आवश्यकता होती है; नाजुक होने के कारण वह शीघ्र टूट भी जाता है। कुछ अनुसंधान-कर्ताओ (११) ने इसके बजाय स्टेनलेस स्टील के बने प्याले का उपयोग किया। इस कठिनाई को हल करने का दूसरा उपाय यह है कि विलायक के बहने की दिशा को बदल दिया जाये। विलियम्स एव कर्बी (१२) ने यह दिखाया कि यदि छनने कागज की पट्टी को ऊपर से इस प्रकार लट-

1. Bases

काया जाये कि उसका एक छोर विलायक में डूबा रहे, तो विलायक "केश-नलिका-चढाव"[1] के कारण धीरे-धीरे ऊपर चढता है। यद्यपि यह चढाव कुछ समय (२४ से ४८ घण्टे) बाद रुक जाता है, तथापि यह इतने ऊपर अवश्य चढ जाता है जिससे एक संतोषजनक क्रोमैटोग्राम बन सके। इन वैज्ञानिको ने यह भी सुझाव रखा कि कागज की स्ट्रिप को पात्र की पेंदी के अनुसार मोड कर उसको ऊपर से इस प्रकार लटकाया जा सकता है कि वह पात्र की दीवारो को न छुए। इस व्यवस्था मे आरभ-रेखा, जिस पर परख-द्रव की बूंद रखी जाती है, विलायक की सतह से समांतर होती है। किन्तु यह विलायक की सतह से कुछ सेंटीमीटर दूर होती है और पात्र की ऊर्ध्वाधर दिशा मे विलायक के साथ चलती है। विलियम्स एव कर्बी ने यह भी ज्ञात किया कि विलायक-पात्र मे सिलडर को सीधा खडा किया जा सकता है और वह साधारण रूप से प्रयोग के दौरान मे नही गिरता। किन्तु लेखकों का मत है कि सुरक्षाके लिए सिलडर को किसी सुगम विधि से लटकाना ठीक होता है। यह भी ज्ञात किया गया कि केश-नलिका चढ़ाव की विधि से ज्ञात साम्र मान कान्स-डेन, गार्डन एव मार्टिन द्वारा ज्ञात साम्र मानों के बराबर थे (देखिए परिशिष्ट क, पृ० १५१)।
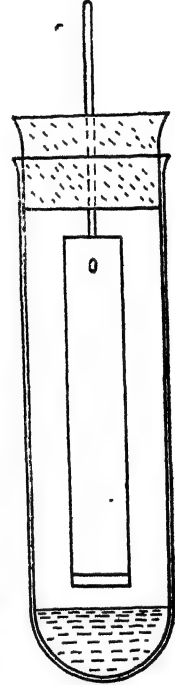
कक्षा मे इस विधि को बडी सरलता से किया जा सकता है। चित्र ६ में एक बड़ी क्वथन नली ली गयी है। इसके स्थान पर नपने गिलास को भी लिया जा सकता है। इसमें नीचें की ओर कुछ मिलीमीटर विलायक भर दिया जाता है। इसके ऊपर रबर की एक डाट कस दी जाती है। इस डाट के बीच में शीशे (कॉच) की छड़ अथवा तार होता है और इसके सिरे पर कोई ऐसी कॅटिया होती है जिससे कागज को सुगमता से लटकाया जा सके। स्ट्रिप के निचले सिरे की ओर आरम्भ-रेखा होती है। स्ट्रिप को इस भॉति लटकाया जाता है कि

चित्र ६—कक्षा में प्रदर्शन के लिए कागज-क्रोमैटोग्रफीय विधि का सरल प्रयोग

1. Capillary ascent

वह विलायक की सतह को छूने न पाये। इस प्रकार कागज की स्ट्रिप को थोड़ी देर रख दिया जाता है। ऐसा करने से कागज, जल और विलायक की वाष्पों से सन्तुलित हो जाता है। इसके बाद शीशे की छड़ अथवा तार को इतना नीचे खिसका दिया जाता है कि उसका निचला भाग विलायक मे डूब कर क्रोमैटोग्राफीय विधि आरम्भ कर दे।

इस विधि के लिए अन्य विविध प्रकार के उपकरणों का उपयोग किया गया है। किसी भी उपकरण मे कोई विशेषता नही है। किन्तु इन सब मे यह बात आवश्यक है कि कागज के चारो ओर के वातावरण को पूरी तरह नियन्त्रित होना चाहिए। यदि पात्र में से विलायक की वाष्प को बाहर निकलने की थोड़ी भी गुजाइश होती है तो पात्र मे वातावरण सम नही रह पाता। अत जो साभ्र मान प्राप्त होते हैं वे ठीक नही होते। यदि प्रयोग करने के पहले कागज को विलायक से सन्तुलित न किया जाये तो भी प्रयोग-फल ठीक नही होते। अतः जर्मिन एव आइशरउड (१३) ने नियन्त्रित ताप पर बड़ी सावधानी से प्रयोग किये। उन्होने ऊपर रखे प्याले से कागज पर विलायक के नीचे दौड़ने की विधि का इस्तेमाल किया। ऊपर रखी शीशे की चद्दर में छेद करके इसे डाट से कस दिया गया। नीचे वाले पात्र मे पहले पानी रखा गया और इस प्रकार उपकरण को जलीय फेज से सन्तुलित कर लिया गया। जब बारह घण्टे तक कागज जल से सन्तुलित हो गया तो डाट को खोल कर चद्दर के छेद मे से पिपेट द्वारा विलायक डाला गया। वातावरण को सम रखने के हेतु डाट को शीघ्र ही लगा दिया गया।

हानेस एव आइशरउड (१४) ने नियत ताप पर प्रयोग किये और इन वैज्ञानिकों ने भी ऊपर रखे प्याले से विलायक के नीचे दौडने की विधि का उपयोग किया। इन्होंने मुलायम लोहे की छडों (शीशे की छड़ मे पिघला कर जोड़ी हुई) को क्रोमैटोग्राम के निचले सिरे पर लगा दिया। इससे कागज सीधा रहता था। इसका एक उपयोग और था। जब काग़ज सन्तुलित होते थे तो पात्र के चारो ओर एक छोटा चुम्बक धीरे-धीरे घुमाया जाता था। इससे काग़ज धीमे-धीमे हिलता था और इस प्रकार वातावरण को सम रखने के लिए पात्र के अन्दर काग़ज़ो का पखा चल जाता था।

कागज के बड़े तावों (१८×२२½ इच) पर क्रोमैटोग्राम बनाने के लिए कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन ने एक ३०×३०×५ इंच के बड़े पात्र का उपयोग किया। इसके चारो ओर शीशे लगे हुए थे और इसके ऊपर ठीक से फ़िट होनेवाला

ढकना था, जिससे पात्र वायुरोधक[1] बन जाता था। पार्ट्रिज (११) ने इसी प्रकार के स्टेनलेस स्टील के बड़े पात्र का उपयोग किया। बडे तावो के ठीक से सँभालने की विधि चित्र ७ मे दिखायी गयी है। दो बडे तावो को दो लंबी शीशे की स्ट्रिपों से दबा दिया जाता है। ध्यान दीजिए कि काग़ज को शीशे की स्ट्रिप की चौड़ान से कुछ अधिक नीचे ले जाकर स्ट्रिप के दूसरी ओर मोड दिया गया है। ऐसा करने से लाभ यह होता है कि दूसरे ताव को बिना हिलाये हुए एक तावको बाहर निकाला जा सकता है। क्रोमैटोग्राम बनने के बाद कागज़ गीला हो जाता है और इस कारण वह स्ट्रिप से चिपक जाता है; अत. उस स्ट्रिप को, जिस पर कागज़ चिपका हुआ है, उठाने पर पूरा ताव उठ जाता है और तब उसको आसानी से बाहर निकाला जा सकता है। कागज को पकडने वाले "बुलडाग" क्लिपो को भी इस्तेमाल किया जा सकता है और इन क्लिपो की पकड़ने की शक्ति को धातु की पतली पत्तियों को लगाकर बढ़ाया जा सकता है।
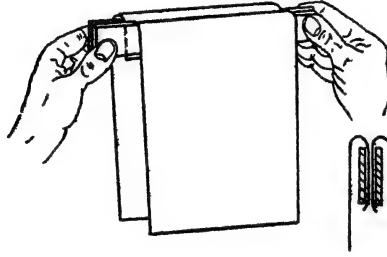
चित्र ७—कागज-क्रोमैटोग्राफी में दो बड़े तावों को सँभालने की विधि

जब एक ही प्रकार के कई क्रोमैटोग्रामो को साथ लगाने की आवश्यकता होती है, तो दत्त, डेण्ट एवं हैरिस (१५) द्वारा प्रयुक्त विधि का उपयोग किया जा सकता है। इन वैज्ञानिको ने ड्युरैल्युमिन[2] के फ्रेम का उपयोग किया और इसमे २०×२० वर्ग सेंमी० वाले छनने कागज के १२ तावों को सुगमता से रखा। यह पूरा फ्रेम विलायक युक्त पात्र में खड़ा रहता है और केश-नलिका-चढ़ाव द्वारा कागज़ो मे विलायक चढ़ता है। जब एक दिशा मे एक विलायक की प्रक्रिया हो जाती है, तो काग़ज़ों को सुखाकर बिना फ्रेम मे से निकाले दूसरे विलायक में रख दिया जाता है।

कागज़

ह्वाटमैन नं० १ काग़ज़ का सबसे अधिक उपयोग किया जाता है। इसके

1. Air-tight   2. Duralumin

दूसरे नंबरो वाले कागजों पर भी प्रयोग किये गये है। किन्तु इन काग़जों की रचना का क्रोमैटोग्राफीय विधि पर क्या प्रभाव पडता है, इस पर अभी पर्याप्त रूप से शोध-कार्य नही हुआ है। कान्सडेन, गार्डन एव मार्टिन (७) ने बताया है कि ह्वाटमैन नं० ४२ पर पृथक्करण तो सतोषजनक रूप से होता है, किन्तु घने होने के कारण इस पर विलायक के विसार की गति धीमी होती है। अतः इस पर प्रयोग-कार्य सुगम नही होता। मोटे कागजो पर प्रयोग विलयनों की बड़ी मात्राओं के पृथक्करण के लिए किये गये थे। ह्वाटमैन "ऐक्सीलरेटर"[1] काग़ज़ (१/२५ इच मोटे) पर पदार्थ सतोषजनक रूप से पृथक् होते है, किन्तु प्रयोग करने मे यह भग हो जाता है। ह्वाटमैन "सीड टेस्टिंग"[2] (१/१६ इंच मोटे) कागज पर विसार सम नही होता।

बाल्सटन एवं टाल्बट (१६) ने ह्वाटमैन कागजों का इस प्रकार वर्गीकरण किया—

तेज विसार	नं० ४, नं० १५ (मोटा कागज);
मध्यम विसार	न० १, नं० ३ एम एम (मोटा कागज़);
	नं० २९ (काला काग़ज);
मध्यम-धीमा विसार	नं० ११ (पतला कागज), नं० २; और
धीमा विसार	न० २०।

एक दूसरी श्रेणी के मोटे काग़जों पर भी प्रयोग किये गये; ये कागज़ दानेदार[3] थे और इनके रेशे कम घने थे। इन पर दोनो दिशाओ में विसार सम होता है। इस श्रेणी में ये कागज़ आते हैं—

मध्यम विसार	न० ७, नं० १००, नं० ३ (मोटा काग़ज़); और
अति धीमा विसार	न० ५।

अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में पदार्थो के पृथक्करण के लिए कागज़ क्रोमैटोग्राफी में बूँदोंको बार-बार लगाया जाता है। एक बूँद के सूख जाने पर उसी पर दूसरी बूँद रख दी जाती है, अथवा पदार्थो को बूँद के बजाय पट्टी के रूप में काग़ज पर लगाया जाता है। इस कार्य के लिए ह्वाटमैन नं० ३ कागज संतोषजनक है। इसकी ७ इंच चौड़ी स्ट्रिप पर लगभग ०.२ मिलीमीटर विलयन लगाया जा सकता है। यदि १ प्रतिशत विलयन लगाया गया है तो इस प्रकार लगभग २ मिलीग्राम विलय-

1. Accelerator 2. Se-d-testing 3. Grained

शील जाता है। यदि पृथक्करण कागजों की कई स्ट्रिपों पर किया जाये तो इस विधि से सूक्ष्म मात्रा मे पदार्थो की तैयारी भी की जा सकती है।

कागज की अशुद्धताओं के कारण कुछ प्रयोगों में क्रोमैटोग्रामो पर भी प्रभाव पड़ता है। किन्तु यदि कागजो को प्रयोग के पहले धो लिया जाये, तो प्रक्रिया संतोष-जनक रूप से होती है। ताँबे की उपस्थिति का पहले ही जिक्र किया जा चुका है। हानेस एवं आइशरउड (१४) ने जब फास्फरिक एस्टरो को साधारण विलायकों द्वारा ह्वाटमैन न० १ अथवा न० ४ कागज पर पृथक् किया तो आरम्भ-रेखा पर एवं चलती हुई बूँद के पीछे-पीछे उनको एस्टरो के कुछ "अवास्तविक"[1] धब्बे दिखाई दिये। बाजार मे मिलने वाले ह्वाटमैन नं० ५४ और नं० ५४१ "अम्ल से धुले हुए" होते है। जब इन कागजो से प्रयोग किये गये तो इन पर भी ये "अवास्तविक" धब्बे दिखाई दिये, किन्तु ये न० १ अथवा नं० ४ पर पाये गये अवास्तविक धब्बों की अपेक्षा काफी हलके थे। यदि किसी भी कागज को प्रयोगशाला मे पहले तनु[2] हाइड्रोक्लोरिक अम्ल और बाद मे आसुत जल से धो लिया जाये तो इन कागजो पर प्राप्त क्रोमैटोग्रामो मे कोई भी अवास्तविक धब्बे नही दिखते। और यदि अम्ल से धुले कागजो मे इतना कैलसियम अथवा मैग्नीशियम ऐसीटेट मिला दिया जाये कि इन कागजो की राख ह्वाटमैन न० १ कागजों की राख के बराबर हो तब इन पर भी प्राप्त क्रोमैटोग्रामों मे अवास्तविक धब्बे दिखाई देते है। इन के अतिरिक्त कभी-कभी कागजो पर धब्बो की "छाया"[3] भी दिखाई पडती है। ये साधारणतया इन चारो प्रकार के कागजो मे पायी जाती है। ये "छाया" धब्बे तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धुले कागजो पर भी पाये जाते है। लेखको का विश्वास है कि कागजो पर यदि ८-हाइड्राक्सी-क्वीनोलीन अथवा हाइड्रोजन सल्फ़ाइड की प्रक्रिया की जाये तो ये "छाया" धब्बे निकल जाते है, क्योकि ये भारी धातुओ के कारण होते हैं।

जब अधिक सख्या मे कागजों को धोना हो, तो चित्र ८ मे दिखाये गये उपकरण का सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है। यह उपकरण पर्सपेक्स प्याला[4] है जिसकी अन्दर से नाप १२ × १२ × १ इच होती है; यह एक इंच गहरा होता है। इस लबे प्याले की पेदी पर $\frac{3}{4}$ इंच चौड़ा छेद बना लिया जाता है; इस छेद की

1. "Ghost" spots　　2. Dilute
3. Shadows to the spots　　4. Perspox trough

लम्बाई उतनी ही होती है जिसमे से ह्वाटमैन नं० १ कागज्ञ का ताव नीचे लटक सके। मशीन द्वारा इस प्याले के दो लम्बे टुकड़े कर लिये जाते हैं। इन दोनों टुकड़ों को पेच से कसा जाने पर उपकरण जल-रोधक होना चाहिए। पेंचदार कील को कसने के लिए चपटी ढिबरी होनी चाहिए।
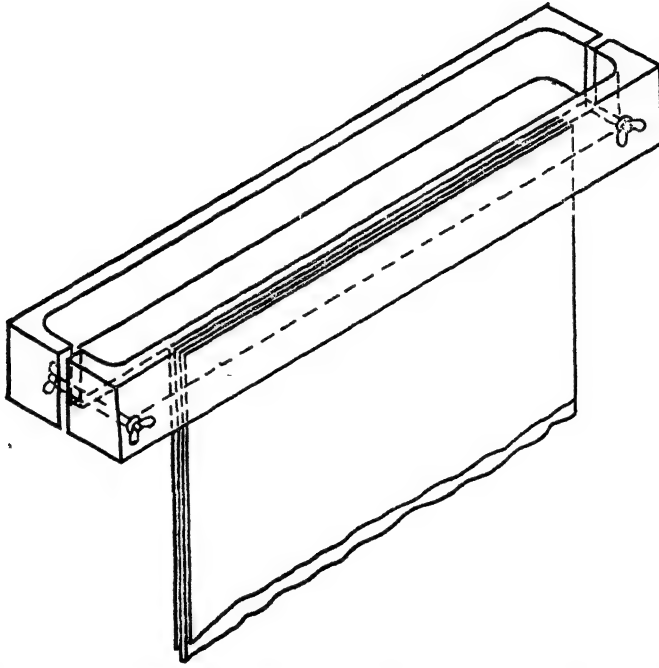
चित्र ८—कागज के अनेक तावों को एक साथ धोने का उपकरण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० २८, आइशरउड एवं हानेस के आधार पर)

जब इस उपकरण का उपयोग किया जाता है तो इसके दो अर्द्ध-भागो को थोड़ा खोल लिया जाता है। तब इसमे ६०[६०] कागजो के तावों को बीच मे रख कर चपटी ढिबरी से कस कर दबा दिया जाता है। ऐसा करने पर प्याले की पेंदी का छेद ढक जाता है। अब प्याले मे धोने वाला द्रव भर दिया जाता है और इसके ऊपर धोने वाले द्रव से भरे बड़े फ़्लास्क को औंधा दिया जाता है। ऐसा करने से

द्रव की सतह उतनी की उतनी बनी रहती है। सम्पूर्ण उपकरण को इस प्रकार लटका दिया जाता है जिसमे नीचे टपकने वाला द्रव एकत्रित होकर नाली में से निकल सके।

कागज की रचना सदैव एक प्रकार की नही होती। इसके कारण दोनो दिशाओं में विलायको की गति प्रायः एक समान नही होती। छनने कागज के गुण-धर्मो के सम्बन्ध मे अधिक जानकारी के लिए उस पुस्तक (१६) को पढ़ना चाहिए जिसका जिक्र किया जा चुका है।

विलायक

विलायकों का चयन पृथक् किये जा सकने वाले पदार्थो पर निर्भर होता है। परिशिष्ट (क) में अनेक विलायको का वर्णन किया गया है, किन्तु कुछ मुख्य बातें यहाँ बतायी जा रही है। विलायक को साधारणतया पृथक्करण कीप[1] में मिलाया जाता है जिससे जलीय-फेज और विलायक से सतृप्त फ़ेज एक समय में ही बन जायें। कुछ विलायको के मिश्रण पर ताप का काफी प्रभाव पड़ता है, उदाहरणतया ब्युटेनाल-जल-ऐसीटिक अम्ल। यदि ऐलकोहलो और अम्लों के मिश्रण बनाये जाये तो कभी-कभी एस्टर बन जाते है और उनमे से जल निकलने लगता है। साधारणतया, विलायको को प्रयोग के एक दिन पहले बना लेना चाहिए। विलायको को सावधानी से रखना चाहिए। इनमें से कुछ में दुर्गंध होती है; एक अप्रिय और कुछ हानिकर भी होते है। अतः क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि को धूम-रोधक स्थान[2] मे करना चाहिए जिससे विलायक के वाष्प कमरे की हवा से न मिल सके। यदि ऐसा प्रबन्ध न हो सके, तो पखों का प्रयोग करना चाहिए और कमरे के सारे रोशनदान खोल देने चाहिए। जिन विलयशीलों का आयनीकरण[3] हो जाता है उनको सावधानी से उपयुक्त करना चाहिए। उदाहरणतया, पौधे के हाइड्राक्सी अम्लों के लिए फार्मिक अम्ल उपयुक्त ब्युटेनाल का उपयोग करना चाहिए; इससे आयनीकरण कम हो जाता है और क्रोमैटोग्रामा धब्बे गोल बनते है। यदि विलायक मे पर्याप्त रूप से अम्ल न हो और विलयशीलों का आयनीकरण होने लगा हो

1. Separating funnel
2. Fume-Cupboard
3. Ionization

तो गोल धब्बो के स्थान पर विलयशीलों की लकीरे-सी[1] बन जाती है। यदि विलायक क्षारीय हो, तो भी लवण बनने के कारण ऐसा होने लगता हैं। विलियम्स एव कर्बी (१२) ने ज्ञात किया कि भास्मिक अमीनो-अम्ल (हिस्टीडीन, लाइसीन अर्जीनिन) आइसोब्युटिरिक अम्ल के साथ विसारित लकीरे बनाते है। यदि इन अमीनो-अम्लो के साथ फीनोल-अमोनिया विलायक का उपयोग किया जाये तो ये भस्मों की भाँति प्रक्रिया करके अच्छे क्रोमैटोग्राम बनाते है। और यदि ब्युटेनाल ऐसिटिक अम्ल विलायक का प्रयोग किया जाये तो ये लवण की भाँति प्रक्रिया करके अच्छे क्रोमैटोग्राम बनाते है। लैंडउ एवं उसके साथियो (१७) तथा मैक्सफ़ोरन (१८) ने अमीनो-अम्ल के स्त्र मानो पर प्रतिरोध क्रिया[2] के प्रभाव का वर्णन किया है।

परख-द्रव के लगाने की विधि

पदार्थों को पहचानने की साधारण विधि यह है कि शीशे की केश-नलिका मे परख-द्रव भर लिया जाये और उसके सिरे को आरम्भ-रेखा पर छुआ दिया जाये। यह केश-नलिका केवल उतनी देर तक कागज को छूती है जब तक कागज पर इतना द्रव नही आ जाता जिससे एक सेटीमीटर व्यास वाली बूँद बन जाये। तब केश-नलिका को हटा लिया जाता है। इसे या तो फेक दिया जाता है या धोकर फिर से उपयोग में लाया जाता है। इस कार्य के लिए गलनांक[3] निकालने वाली नलिकाओ का उपयोग किया जा सकता है; किन्तु ये कुछ चौड़ी होती है। अच्छा यही है कि प्रयोगशाला में वेकार पड़ी कॉच की अनेक नलिकाओं को पिघला करके खीच लिया जाये और उनकी केश-नलिकाएँ बना ली जाये। इन केश-नलिकाओं को तेज चाकू से काटना चाहिए जिससे इनके किनारे साफ हों। सुविधानुसार २ से ४ इच तक लबी काटी जा सकती है।

एक या दो मिनट मे परख-द्रव की बूँद सूख जाती है। यह छोटी होनी चाहिए और इसका सान्द्रण कम होना चाहिए। ऐसा करने से क्रोमैटोग्राम अच्छा बनता है। जैसे-जैसे विलायक ऊपर चढता है, ये बूँदे फैल कर छोटी बूँदों में टूटती जाती है। जितनी अधिक ये फैलेगी, उतनी ही देर तक कागज को विलायक मे रखना होगा।

1. Streaks 2. Buffering 3. Melting point

एक नन्ही-सी बूँद की अपेक्षा बड़ी बूँद में पदार्थ की मात्रा सौ गुनी तक हो सकती है। यदि बूँद बहुत छोटी है तो सम्भव है कि कोई भी क्रोमैटोग्राम न बने। बड़ी बूँद मे यदि पदार्थ अधिक सांद्रण मे है तो कदाचित् यह पूर्ण रूप से घुल न पाये और इस कारण धब्बे के पीछे लकीरे दिखाई दे सकती हैं। कभी-कभी धब्बा गोल होने के बजाय "कमरयुक्त"[1] बन जाता है। ऐसा लगता है जैसे यह दो धब्बो में टूटने वाला हो। इसका कारण यह है कि मूल बूँद पहले सूख जाती है और तब केन्द्र के बजाय बूँद के किनारो पर विलयशील का सांद्रण अधिक हो जाता है (देखिए—चित्र ९)। बूँद मे विलयशील की मात्रा को सम रखने के लिए बूँद छोटी लगानी चाहिए। कभी-कभी कागज़ को बदलने पर भी "कमरयुक्त" धब्बे बनना बन्द हो जाते है।
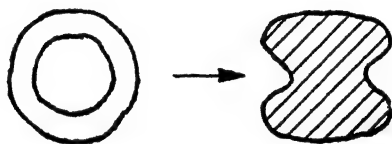
चित्र ९—क्रोमैटोग्राम के कमरयुक्त धब्बे

कागज़ पर कम अथवा अधिक मात्रा में लकीरों के पड़ने के कई कारण हो सकते है—कागज पर तेज शोषण, काग़ज की अशुद्धता के साथ विलयशील की प्रक्रिया, विलयशील का एक से अधिक आणविक[2] अवस्था में रह सकने की संभावना आदि। अन्तिम दशा के भी कई कारण हो सकते है—बहुत अधिक साद्रण, आशिक आयनीकरण चलावयता[3] आदि।

जोन्स (For. Soc. Diseussions, .पृ० २८९) ने कहा है कि वह साधारणतया व्हाटमैन नं० ७ कागज़ को पसन्द करते है, क्योकि इस पर अमीनो-अम्लों के गोल धब्बे बनते है। काग़ज़ क्रोमैटोग्राफ़ी की परिमाणात्मक[4] विधियो के वर्णन के समय बूँदों के आकार और शकल की विस्तारपूर्वक चर्चा की जायेगी।

1. "Waisted"
2. Molecular
3. Tautomerism
4. Quantitative

क्रोमैटोग्राम का सुखाना

विलयशीलो और उपयुक्त फव्वारो (सिचन-नलिकाओ)[1] के अनुसार क्रोमै-टोग्राम को विविध विधियों से सुखाया जाता है। कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन ने ११०° पर क्रोमैटोग्राम को सुखाया, सूखने पर क्रोमैटोग्राम को ८०° पर पाँच मिनट तक रखा गया। इससे निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया पूर्ण होकर ठीक से रंग बना देती हैं। पार्ट्रिज (११) ने सुखाने के लिए एक विशेष प्रकार का ऊष्मक[2] बनाया। इसमें एक अपकेन्द्रीय[3] पखा लगा रहता था। वैद्युत हीटरो के ऊपर से होकर इसके द्वारा ऊष्मक मे हवा आती थी और फ्लू पर से होकर बाहर निकलती थी। इस ऊष्मक का ताप १०५° रहता था। आल्बन एव ग्रास (Analyst, ७७, ४०६, १९५२) ने एक ऐसे ऊष्मक का वर्णन किया है जिसमे ताप सम रहता है। नोवेली (१९) ने यह सिद्ध कर दिया है कि १००° तक अमीनो-अम्लो का विच्छेदन[4] गौण होता है। किन्तु इसके ऊपर के तापों पर यह गभीर हो जाता है। पहचानात्मक[5] विधि मे यदि अधिक ताप के कारण कुछ पदार्थ नष्ट भी हो जाये तो इससे कोई विशेष हानि नही होती. किन्तु परिमाणात्मक विधियो में उपयुक्त ताप का रहना आवश्यक होता है। यदि ताप को घटा दिया जाये तो ऊष्मक मे क्रोमैटो-ग्रामो के रखने की अवधि बढानी पड़ती है। कुछ शोध-कर्ताओ ने क्रोमैटोग्रामों को निर्वात[6] मे सुखाने पर प्रयोग किये है। कुछ वैज्ञानिक क्रोमैटोग्रामों को निम्न वाष्पशीलता वाले द्रव से धो देते है। इसके लिए पेट्रोलियम ईथर अथवा ऐसे द्रव का उपयोग किया जाता है जो विलयशील को कागज़ मे से न धो दे। द्वि-आयामी क्रोमैटोग्रामों में सुखाने की विधि पर विशेष ध्यान देना चाहिए, अन्यथा एक विला-यक की थोड़ी-सी भी मात्रा रह जाने पर दूसरे विलायक की प्रक्रिया पर गम्भीर असर पड़ सकता है।

फव्वारे[7]

साधारणतया धूम-कक्ष मे क्रोमैटोग्राम पर फव्वारा या सिंचन-नली चलाना

1. Sprays 2. Drying oven 3. Centrifugal
4. Decomposition 5. Qualitative 6. Vaccum
7 Sprays

चाहिए। कागज के पीछे थोडी रोशनी भी रहनी चाहिए। ऐसा करने से कागज़ के गीले होने की प्रक्रिया सरलता से देखी जा सकती है। यदि कोई स्थान सूखा न रह जाये तो सम्भव है कि उसी स्थान पर विलयशील हो और इस प्रकार धब्बा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित न हो सके। और यदि फव्वारे से अधिक द्रव को कागज पर छोड दिया गया है तो धब्बे धीमे पड़ सकते है; उनकी जगह भी बदल सकती है। कभी-कभी फव्वारे के स्थान पर अन्य विधियो का भी उपयोग कियाँ जाता है। उचित स्थानो पर उनका वर्णन किया जायेगा।

कागज क्रोमैटोग्राफ़ी द्वारा पृथक् हो सकने वाले यौगिकों के वर्ग

चित्र १० मे कुछ वास्तविक क्रोमैटोग्राम के चित्र दिखाये गये है। परिशिष्ट क में कुछ यौगिको की तालिका दी गयी है। इनके साथ प्रयुक्त विलायक, फव्वारे में प्रयुक्त द्रव और साश्र मान भी दिये गये है। ये तालिकाएँ विस्तृत नही है। वस्तुत:, प्रतिदिन नवीन शोध-कार्य हो रहे है और प्रत्येक मास क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् किये जा सकने वाले पदार्थो की सख्या बढती जा रही है। बाल्सटन एव टाल्बट ने पृथक् हो सकने वाले यौगिकों का वर्णन किया है।
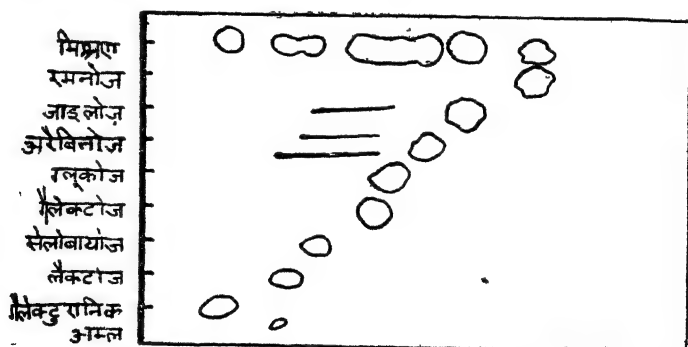
चित्र १० 'क'—कागज-क्रोमैटोग्रामों के चित्र

शोध-निबन्ध में दिये साश्र मानों मे प्रयोग करने पर थोड़े अन्तर पाये जा सकते हैं। किन्तु एक ही वर्ग के यौगिको के पृथक् होने का क्रम वही रहना चाहिए।
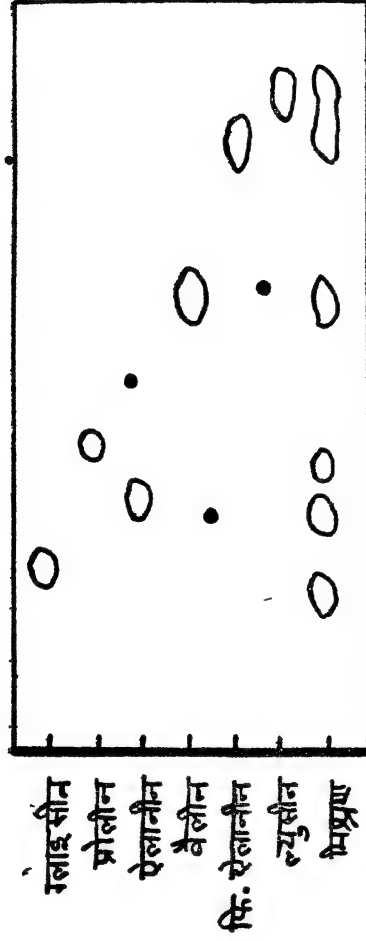
विलायक : n - प्रोपेनाल / जल 80 : 20

फुहारा : निनहाइड्रिन ।

चित्र १० 'ख'—कागज—क्रोमैटोग्रामों के चित्र

अध्याय ३

कागज़-क्रोमैटोग्राफ़ी के उपयोग

स्पष्ट रूप से कागज क्रोमैटोग्राफी का सबसे पहला उपयोग यह है कि पृथक् हुए पदार्थो का परिमाणात्मक परिमापन किया जाये। इसके लिए कई विधियां प्रचलित है—प्रस्फुटित धब्बे के क्षेत्रफल की गणना, अधिकतम रग घनत्व[1] की माप, धब्बों का कर्त्तन[2] और उनका सूक्ष्म-रासायनिक[3] परिमापन, तथा धब्बे का निष्कासन और उसके बाद सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन।

धब्बे के क्षेत्रफल का माप

फ़िशर, पार्सन्स एव मारिसन (२०) ने एक प्रायोगिक नियम को ज्ञात किया। इसको इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—यदि एक प्रकार के क्रोमैटोग्रामों में एक ही पदार्थ की विभिन्न सांद्रण वाली बूंदो को लगाया जाये तो धब्बों के क्षेत्रफल आरम्भिक सांद्रण के लागौरिथ्म से सीधे समानुपाती होते है। ब्रिम्ले (२१) ने यह स्थापित किया कि इस नियम को विसार[4] के गणित सिद्धान्त से निकाला जा सकता है; इसमे यह मानना पड़ता है कि बूंद कागज पर विसार के कारण फैलती है।

जब इस विधि से किसी पदार्थ के साद्रण का परिमापन किया जाता है तो उसी क्रोमैटोग्राम पर शुद्ध पदार्थ के ज्ञात सांद्रण वाले विलयन की दो और बूंदें रख दी जाती है। एक बूंद कम साद्रण वाली होती है और दूसरी अधिक साद्रण वाली। जब ये बूंदे उसी क्रोमैटोग्राम पर धब्बे बनाती है, तो उनके क्षेत्रफल ज्ञात कर लिये जाते है। इन क्षेत्रफलो के लागौरिथ्म और धब्बो के साद्रण के ग्राफ़ खीच लिये

1. Colour density 2. Excision 3. Micro chemical
4. Difusion

जाते है। सीधे समानुपाती होने के कारण ज्ञात साद्रणो वाले दो बिदुओ से सीधी रेखा प्राप्त होती है। साधारण रूप से केवल दो साद्रणो को लेकर यह रेखा-बनायी जा सकती है, किन्तु ठीक परिमापन के लिए कई साद्रणो वाले विलयनो को लेकर यह ग्राफ-रेखा बनानी चाहिए। बूँदो को एक साथ आरम्भ-रेखा मे रख देना चाहिए और इन सबको एक ही व्यास का होना चाहिए। अच्छा यही है कि इनका व्यास ५ मिलीमीटँर से अधिक न हो। प्रस्फुटित धब्बों के क्षेत्रफल को प्लेनीमीटर[1] से मापा जा सकता है, या उनके ऊपर पतले कागज (जिनपर छोटे-छोटे वर्ग बने होते है) को रखकर उनका क्षेत्रफल ज्ञात किया जा सकता है। धब्बो को काटकर तौला भी जा सकता है। क्षेत्रफल मापने के पहले धब्बो के चारो ओर पेसिल से रूप-रेखा बना लेनी चाहिए। यह कार्य सरल नही है क्योकि धब्बो की यथार्थ रूप-रेखा को निश्चित करने में प्रत्येक शोध-कर्त्ता का मत भिन्न हो सकता है। इस प्रकार से जो त्रुटि होती है उसको कम करने के लिए धब्बो के रिफ्लेक्स प्रिट[2] बनाये जा सकते हैं। इन प्रिटों मे धब्बों के किनारे अधिक स्पष्ट हो जाते है।

इस कार्य का आरम्भ करने वालों फ्रोमागियो एव दे गारिल्हे (२२) का विश्वास है कि इस विधि से काफी संतोषजनक परिमापन किये जा सकते है। इस विधि का महत्त्व तब बढ़ जाता है जब अन्य सूक्ष्म-रासायनिक विधि कठिन हो अथवा मालूम ही न हो।

रंग घनत्व के माप से परिमापन[3]

बुल, हान और बैप्टिस्ट (२३) ने अमीनो-अम्लो की निनहाइड्रिन से प्रक्रिया पर कार्य किया है। इन्होने धब्बे के रग मे अतरो को मापा और इनसे घनत्व-वक्र बनाया। यदि यह मान लिया जाये कि इस वक्र पर के किसी बिदु से प्रतिक्रिया करने वाले किसी अमीनो-अम्ल के रग-घनत्व समानुपाती होते है और यहाँ पर बियर का नियम[4] लागू होता है, तो बनाये गये वक्र का क्षेत्रफल प्रक्रिया करने वाली बूँद में पदार्थ की मात्रा से समानुपाती होना चाहिए। इन वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि यह बात करीब-करीब सही थी। यदि इस वक्र के आधार पर रग-

1 Planimeter 2. Reflex print 3. Estimation
4. Beer's Law

घनत्व द्वारा परिमाणात्मक परिमापन किया जाये तो स्टैंडर्ड त्रुटि ८.८ प्रतिशत होती है।

टाम्पसन और उनके साथियों (२४,२५) ने परिमाणात्मक क्रोमैटोग्राफीय विधि मे त्रुटियो के कुछ कारणों का अन्वेषण किया है। उन्होने निनहाइड्रिन के धब्बे को काट लिया और उसके सार के रग को रग-मापी[1] विधि से ज्ञात किया। पता चला कि इस प्रकार अधिकतर अमीनो-अम्लों की ९५ प्रतिशत मात्रा निकल जाती थी।

यदि मूल बिदु विसार द्वारा फैलता है तो धब्बे का अधिकतम रग-घनत्व मूल रूप से रखे गये अमीनो-अम्लो की मात्रा से समानुपाती होना चाहिए। ब्लाक (२६) ने निनहाइड्रिन रग के प्रयोग से ज्ञात किया कि यह समानुपाती नियम ठीक नही है। मैक्फारेन, ब्राड एव रुटकाउस्की (२७) ने शर्कराओं के लिए अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट का उपयोग किया, और ज्ञात किया कि अधिकतम रंग-घनत्व साद्रण के लागैरिथ्म से समानुपाती होता है।

ज्ञात साद्रणों वाले विलयनो को लेकर अंकन-वक्र[2] प्राप्त किये जा सकते है और इनसे परिमापन (आकलन) हो सकता है। यह आवश्यक नही कि ये वक्र किसी नियम के अनुसार हो। नियम के अनुसार न होने के कई कारण हो सकते है—एक निर्धारित बिदु (एक निश्चित क्षेत्रफल नही) पर रंग-घनत्व के मापन मे कठिनाई, निनहाइड्रिन के रग मे अन्तर, और अपूर्ण प्रतिक्रिया की संभावना। अतिम कठिनाई का एक उदाहरण दिया जा सकता है—अमीनो-अम्लो के मिश्रण के द्वि-आयमी क्रोमैटोग्राम पर निनहाइड्रिन के ऐसे हलके विलयन की प्रक्रिया हो सकती है जिससे प्रस्फुटन पूर्ण हो और धब्बो को तो पहचाना जा सके, किन्तु, ये धब्बे इतने हलके हो सकते है कि उनका कर्त्तन सभव न हो या कुछ अमीनो-अम्ल बिना प्रतिक्रिया के ही रह गये हों—,अत इनका पूर्ण निष्कासन नही होता।

कर्त्तित[3] धब्बे का सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन

सूक्ष्म-रासायनिक विधियों का बिस्तृत विवेचन अन्य पुस्तको में मिलेगा। यहाॅ पर केवल कर्त्तित धब्बों मे उनके उपयोग का वर्णन किया जा रहा है।

1. Colorimetric　2. Calibration curves　3. Excised

सबसे पहले तो बिना परख-द्रव को कागज पर लगाये "सादे"[1] प्रयोग करने चाहिए। इनसे यह ज्ञात हो जाता है कि कागज अथवा विलायक मे ऐसे कोई पदार्थ तो नही है जो प्रयोग-फलो को प्रभावित करे। यह ध्यान रखना चाहिए कि एक ही नम्बर के कागज के विविध नमूने और उनके विभिन्न ढेरो के गुण-धर्मों मे भी अन्तर हो सकता है।

यह जानना आवश्यक है कि द्रव की कितनी मात्रा आरभ-रेखा पर लगायी गयी हैं। इस के लिए सूक्ष्म-पिपेट[2] की आवश्यकता होती है। प्रयोगशाला मे सुगमता से बनायी जा सकने वाली ऐसी पिपेट (२८) चित्र ११ में दिखायी गयी है।
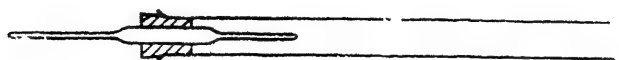
चित्र ११—सरल सूक्ष्म-पिपेट (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० २८, आइशरउड एवं हानेस के आधार पर)

इस पिपेट का मुख्य भाग मोटी दीवार वाली केश-नलिका है। इसके दोनो सिरो को नुकीला बना लिया गया है। केश-नलिका की लम्बाई लगभग १.५ सेमी होती है। ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि इसमें १-६ माइक्रोलिटर तक द्रव भरा जा सके, क्योंकि प्रयोगानुसार लगभग इतने ही द्रव को लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस केश-नलिका को शीशे की एक चौड़ी (लगभग ½ इंच व्यास वाली और ४-६ इच लंबी) नली से जोड दिया जाता है, यह बीच मे फूली हुई होती है। ऐसी पिपेट को बनाना कठिन नही है। जब इसका प्रयोग करना हो तो इसके निचले सिरे को परख-द्रव मे डुबोया जाता है। ऐसा करने पर द्रव तुरन्त ही केश-नलिका मे भर जाता है। इसके अकन[3] के लिए तोलन-बोतल मे छनना कागज रख लिया जाता है; विभिन्न ऊचान तक द्रव भर कर इसे कागज से छुआया जाता है। द्रव सोखने के बाद बोतल को तौल लिया जाता है। इस तौल मे से केवल तोलन-बोतल और छनने कागज का भार घटाने पर द्रव का भार ज्ञात हो जाता है और इससे उसके आयतन की गणना कर ली जाती है।

1. Blank 2. Micro-pipette 3. Calibration

निष्कासित पदार्थो का सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन

शर्करा (२९) पर किये गये प्रयोगों का उदाहरण स्वरूप यहाँ वर्णन किया जायेगा। इन वैज्ञानिकों ने आरम्भ-रेखा पर ३ सेमी दूर-दूर कई बूँदे रखी। सूक्ष्म पिपेट के प्रयोग से ४०५ माइक्रोलिटर द्रव लगाया गया। बयुटेनाल-ऐसिटिक अम्ल-जल विलायक को क्रोमैटोग्राम पर दौड़ाया गया। जब पृथक्करण हो गया तो क्रोमैटोग्राम को (निर्वात मे) सुखा लिया गया। धब्बो की पहचान के लिए अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट का उपयोग किया गया। आरम्भ-रेखा से जो धब्वे सबसे नजदीक थे उनकी स्ट्रिपे काट ली गयी। इन स्ट्रिपो को गाइड मानकर ७.५ × ३ सेमी की स्ट्रिपे उसी विधि से काटी गयी जिसका पृ० १२ एव २२,२३ वर्णन किया जा चुका है। इनका एक सिरा काट कर नुकीला बना लिया गया (इसमें शर्करा के धब्बे लगभग १ सेमी ऊपर रहते थे) सादी पट्टियाँ भी काटी गयी और उन पर भी ऐसी ही प्रक्रिया की गयी।

साक्सह्लेट धारित्र मे इन स्ट्रिपों को रखा गया और शुष्क (अजलीय) ईथर (पेट्रोलियम ईथर; क्वथनाक, ६०-८०° आदि जाईलोज उपस्थित है) द्वारा स्ट्रिपो को विलायक से मुक्त कर लिया गया। तब शर्करा को स्ट्रिपों (पट्टियों) मे से इसी विधि से पृथक् किया गया, किन्तु इस बार जल को विलायक रूप मे प्रयुक्त किया गया। एक बडी सूक्ष्म पिपेट को स्ट्रिप के नुकीले सिरे पर लगा दिया गया। शर्करा-विलय की बूदे स्ट्रिप मे नीचे आती गयी और पिपेट मे एकत्रित होती गयी। प्रत्येक स्ट्रिप मे से प्राप्त विलयन को (लगभग ०.३—०.४ मिलीलीटर) को एक छोटे प्याले मे रख लिया गया। यह प्याला पैराफीन मोम के टुकड़े को खोद कर बनाया गया था। तत्पश्चात् फास्फोरस पेटाक्साइड के ऊपर मोम के टुकड़े को रख कर जल सोख लिया गया।

शर्कराओं के सूक्ष्म-रासायनिक परिमापन (प्राक्कलन) के लिए अन्य बातों को मूल शोध-निबंध से जाना जा सकता है। उस निबध में जो संख्याएँ दी गयी है उनसे पता चलता है कि शर्कराओं—ग्लूकोज, लैक्टोज, गैलेक्टोज, माल्टोज, मैनोज और जाइलोज़—के किन्ही मिश्रित द्वद्वों[1] का परिमापन ५ प्रतिशत यथार्थता से हो सकता है; इन प्रयोगो में प्रत्येक शर्करा की मात्रा केवल ४० माइक्रोग्राम थी।

1. Mixed pairs

हर्स्ट और उनके साथियों ने इसी प्रकार की विधियों का वर्णन किया है। ये विधिया स्वतन्त्र रूप से निकाली गयी थी। इनमे ०.१ से १० मिलीग्राम तक शर्करा ली जाती हे, इनके मिश्रण के पृथक्करण और परिमापन मे केवल + २ प्रतिशत की त्रुटि होती है (J. Chem. Soc., १९४८,१६७९;एव १९४९, ९२८ और १६५९)।

जब ऐसे अनेक परिमापन करना हों तो स्ट्रिपो मे से धब्बों के निष्कासन के लिए उपयुक्त उपकरण का प्रयोग करना चाहिए। चित्र १२ मे ऐसा ही एक उपकरण (२८) दिखाया गया है। शीशे की छड को खीच कर बनाया गया एक क्लिप दायी
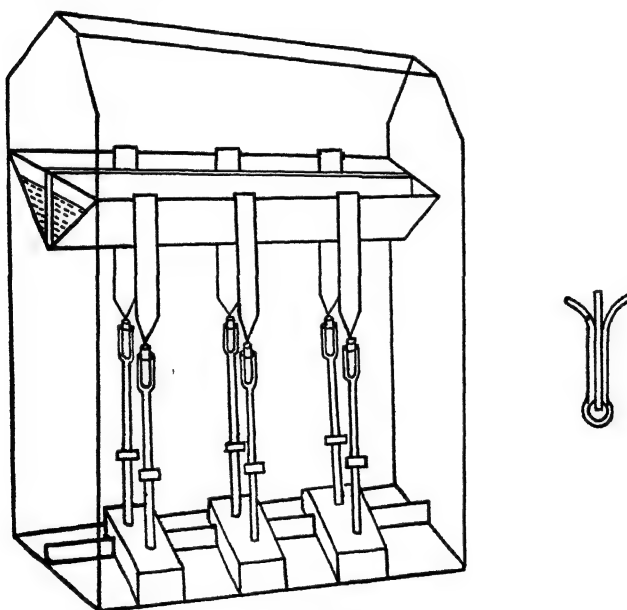
चित्र १२—निष्कासन-उपकरण। इसमें कई पट्टियों का एक साथ निष्कासन किया जाता है। (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० २८, आइशर उड एवं हानेस के आधार पर)

ओर दिखाया गया है। यह विलायक की बूदों को ठीक दिशा में एकत्र करने में सहायता देता है। पर्सपेक्स (अथवा अन्य उपयुक्त प्लास्टिक) के बने लम्बे प्याले

मे निष्कासक द्रव को भर लिया जाता है। कागज की स्ट्रिपों के चौकोर (जो नुकीला नही है) सिरे को इस प्याले मे डूबो कर शीशे की स्ट्रिप से दबा दिया जाता है। नुकीले सिरे पर शीशे के क्लिप को लगा दिया जाता है और उसके नीचे टपकते हुए द्रव को एकत्र करने के लिए परख-नली अथवा उपयुक्त पात्र को रख दिया जाता है।

सरल उपयोग

कागज-क्रोमैटोग्राफ़ी के सबसे सरल उपयोग वे है जिनमे अन्य परख विधियों के साथ-साथ इस विधि का पदार्थो के पहचानने अथवा लक्षण-निर्धारण मे उपयोग किया जाता है। यहाँ पर ऐसे कुछ उदाहरण दिये जा रहे है।

डेन्ट और उनके साथियो ने रोगियो के दैनिक मूत्रो और रक्त के नमूनो का विस्तृत अध्ययन किया है। डेन्ट (३०) ने लगभग साठ अमीनो-अम्लो एवं निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करने वाले अन्य यौगिको की जो साधारणतया जीव-द्रवों[1] मे पाये जाते है, क्रोमैटोग्राफी का अध्ययन किया हैं। आपने (३१) ऐल्फा-अमीनो अम्लो को निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करने वाले अन्य पदार्थो (३२)से बडी सरल विधि द्वारा पृथक् करके पहचाना। कागज के ताव पर परख-द्रव की बूदो को रखने के बाद कापर-कार्बोनेट का बारीक चूर्ण बुरक दिया गया। क्योकि यह मालूम है कि ऐल्फा-अमीनो-कार्बाक्सिल की रचना वाले अमीनो-अम्ल तावे से सकुल[2] बना लेते है। प्रयोग करने के लिए दो क्रोमैटोग्राम लिये गये। उनमे से एक पर कापर-कार्बोनिट बुरका गया और दूसरे पर नही। आरम्भ-रेखा पर इन अमीनो-अम्लों टाउरीन, गामा-अमीनों-ब्युटिरिक अम्ल, सिस्टीक, ग्लाइसीन, टायरोसीन, ल्युसीन, वैलीन और एलानीन—की ५ माइक्रोलिटर की बूदे (M/०००) रखी गयी। जिस कागज पर कापर कार्बोनिट बुरका गया था, उसके क्रोमैटोग्राम में केवल टाउरीन और गामा-अमीनो ब्युटिरिक अम्ल के धब्बे दिखाई दिये।

डेन्ट और उनके साथियो (३२) ने मानव-मूत्र के कागज-क्रोमैटोग्रामो मे एक विशेष धब्बे का पता लगाया और इसको "I-धब्बा" कहा। यह एक ऐसे अज्ञात यौगिक का धब्बा था जो निनहाइड्रिन से प्रतिक्रिया करता है। स्वस्थ लोगो मे से

1. Biological liquid 2. Complex

कुछ के पेशाब मे यह यौगिक अधिक मात्रा मे आने लगता है, पर इन लोगो के रक्त में इस यौगिक की मात्रा साधारण स्तर पर ही होती है। अनुमान लगाया गया कि कदाचित् यह उनके असाधारण वृक्क[1] के कारण है ; उनके वृक्क की यह असाधरणता जीवन-पर्यंत रहती है। आयन-विनिमय स्तम्भो (जिनका इस पुस्तक मे बाद मे वर्णन किया जायेगा) के उपयोग से इस उपपदार्थ की थोडी मात्रा तैयार की गयी। ऐसा करने पर उसके पहचानने मे सुगमता हुई। बाद मे यह निश्चित हुआ कि इस पदार्थ मे कार्बन के चार परमाणु है और यह कोई मानो-अमीनो, मानो कार्बाक्सिलिक अमीनो-अम्ल है। इसके आठ समावयव हो सकते थे। क्रोमैटोग्राम पर इनके धब्बों से यह निश्चित किया गया कि ७ समावयव इस प्रकार का धब्बा नही बनाते । जो समावयव बचा, वह बीटा-अमीनो-आइसोब्युटिरिक अम्ल (ऐल्फा-मैथिल-बीटा-ऐलानीन) था। अततोगत्वा, यह निर्धारित हुआ कि इस यौगिक के कारण ही कागज पर "I-"धब्बा" बनता था।

कागज-क्रोमैटोग्राफी के दूसरे उपयोग का उल्लेख एक दूसरे शोध-निबन्ध (३३) में मिलता है। इसमे लेखकों ने दिखाया है कि स्वतन्त्र अमीनो-अम्ल आपस मे प्रतिक्रिया करके पेप्टाइड बनाते है और ट्राइपेप्टाइड (ग्लूटाथायोन) एक विशेष एजाइम[2] की उपस्थिति मे बनता है। इन प्रतिक्रियाओ को कागजक्रोमैटोग्राफी से ज्ञात किया गया और प्रतिक्रिया से बने पदार्थो की पहचान भी इसी विधि से की गयी। इसके लिए कई सार-मिश्रण[3] बनाये गये। इनमे ग्लूटाथायोन, भेड़ के वृक्क मे से निकाला गया एक एजाइम और इन तीन अमीनो-अम्लो—ल्युसीन, वैलीन और फिनाइल ऐलानीन—मे से कोई एक अम्ल होता था। जब इस सारे मिश्रण के क्रोमैटोग्राम बनाये गये, तो कुछ नये धब्बे बनते दिखाई पडे। अनुमान लगाया गया कि यह सार-मिश्रण के किसी अमीनो-अम्ल का गामा-ग्लूटामिल यौगिक होगा। इस सार-मिश्रण की कई बूदे क्रोमैटोग्राम पर दौडायी गयी और नये धब्बो का कागज मे से निष्कासन किया गया। निष्कासित पदार्थ का जल-विश्लेषण किया गया—इससे केवल ग्लूटामिक अम्ल और फिनाइल ऐलानीन प्राप्त हुए। सैन्गर की अत-समूह[4] विधि से ज्ञात हुआ कि ग्लूटामिक अम्ल मे अमीनों

1. Kidney
2. Enzyme
3. Digests
4. Sangers end group method

अत-समूह होता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि नया पदार्थ या तो ऐल्फा या गामा-ग्लूटामिल फिनाइल ऐलानीन है। अब ऐल्फा-ग्लूटामिल-फिनाइल-ऐलानीन के विश्वासपात्र नमूने को लेकर क्रामैटोग्राम बनाया गया। चूकि इस पदार्थ की कागज पर प्रक्रिया विभिन्न थी, अत. यह स्थापित किया गया कि अज्ञात पदार्थ गामा-ग्लूटामिल फिनाइल ऐलानीन है।

आल्बन एव ग्रास (३४) ने कच्ची शर्करा मे पाये जाने वाले रैफीनोज की मात्रा की नित्यप्रति जांच के लिए काग़ज-क्रामैटोग्राफ़ी की विधि का प्रयोग किया। आपका कहना है कि कच्ची शर्करा के २ माइक्रोग्राम (०.०५ प्रतिशत) के नमूने की तनिक मात्रा को भी निर्धारित किया जा सकता है।

इन वैज्ञानिकों ने सारे-शीशे के उपकरण का प्रयोग किया और पार्ट्रिज की भॉति सुखाने वाले विशेष ऊष्मक को बनाया। प्रयोग मे उपयुक्त विलायक का मिश्रण इस प्रकार था—नार्मल ब्यूटेनाल, पिरीडीन, जल और बेजीन; ये द्रव क्रमशः ५ :३ .३ : १ के अनुपात मे आयतन के अनुसार मिलाये गये थे। फव्वारे में प्रयुक्त द्रव ऐल्फ़ा-नैफथाल का १ प्रतिशत विलयन था; प्रयोग के पहले इसके ५० मिलीलीटर मे ५ मिलीलीटर फ़ास्फ़ोरिक अम्ल मिला लिया जाता था। इस विधि का पूरा वर्णन और उपकरण की फोटो उनके बाद मे प्रकाशित शोध-निबंध (३५) मे दिये हुए है।

आल्बन एवं ग्रास का कहना है "क्रोमैटोग्राफी के अतिरिक्त अब तक जो अन्य विधियाँ मालूम है उनसे इन पदार्थो की इतनी थोड़ी मात्रा का यथार्थ निर्धारण कठिन है और अन्य विधियों के प्रयोग करने पर पदार्थ मिश्रण के अन्य अवयवों से प्रभावित भी हो सकते है।" वस्तुतः, जो उदाहरण ऊपर दिये गये है, उनसे स्पष्ट हो गया होगा कि ये प्रायोगिक फल काग़ज-क्रोमैटोग्राफी की विधि के अलावा किसी दूसरी विधि से नही प्राप्त किये जा सकते थे।

अन्य परख-विधियों के साथ क्रोमैटोग्राफ़ी का उपयोग

अन्य परख-विधियों का उपयोग करने के पहले काग़ज़ क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि से किसी मिश्रण के अवयवों को पृथक् कर लेना चाहिए। बार्टलेट, हफ़ एवं जोन्स (३६) ने मेथिलयुक्त[1] शर्कराओं के अन्त-समूह के निर्धारण में रगमापी विधि का

1. Methylated

वर्णन किया है ; यह एक अधिक अच्छी सूक्ष्म-रासायनिक विधि है। मेथिलयुक्त पालीसैकराइडो के टूटने से मेथिलयुक्त शर्कराएँ बनती है। इनको पहले कागज क्रोमैटोग्राम पर पृथक् कर लिया जाता है और तब हाथार्न द्वारा बतायी विधि से गरम मेथिल ऐलकोहल के साथ निष्कासन कर लिया जाता है। इसके पश्चात् रंगमापी विधि लगायी जाती है। जिन प्रयोगो का उन्होने वर्णन किया है उसके अनुसार मेथिलयुक्त ग्लाइकोजन[1] से मेथिलयुक्त शर्कराओ के बनने की मात्रा यह थी—७० माइक्रोग्राम २. ३ : ४: ६ टेट्रामेथिल ग्लूकोज, ५५६ माइक्रोग्राम २ : ३ ६ ट्राइमेथिल ग्लूकोज, और १५३ माइक्रोग्राम डाइमेथिल ग्लूकोज। जब प्रयोग को दुहराया गया तो क्रमशः ८० . ६०६ और १९८ माइक्रोग्राम वही पदार्थ उसी क्रम मे प्राप्त हुए। इन वैज्ञानिकों का कहना है कि "टेट्रा" शर्करा की इन मात्राओं से ऐसा लगता है कि उसके अणु मे ग्लूकोज की ११.९ अथवा ११.३ इकाइयां है। अन्य विधियो से ज्ञात हुआ है कि इस "टेट्रा" शर्करा मे ग्लूकोज की १२ इकाइयां है। विशेष बात यह है कि क्रोमैटोग्राफ़ीय विधि में एक मिलीग्राम से कम पदार्थ की आवश्यकता होती है।

विशेष निरूपित करने वाली युक्तियों[2] के उपयोग

कागज़ पर जो धब्बे स्पष्ट रूप से नही दिखाई देते, उनको पहिचानने के लिए परा-बैंगनी[3] प्रकाश का उपयोग किया जा सकता है। इसमे या तो धब्बों की प्रति-दीप्ति[4] की जा सकती है अथवा गीले कागज़ की। रासायनिक यौगिको में रेडियम-धर्मी[5] तत्त्वों को भी मिलाया जा सकता है; ऐसा करने से वे यौगिक कागज़ पर जहाँ कहीं भी हों पहचाने जा सकते है। बोर्सनेल (३७) ने एक विशेष प्रकार का उपकरण बनाया। इसके द्वारा छ ने-कागज के क्रोमैटोग्रामों मे वितरित रेडियम-धर्मिता को परिमाणात्मक रूप से गिना जा सकता है। विशेष रूप से रेडियम-धर्मी फ़ास्फ़ोरस की सहायता से हानेस एवं आइशरउड की विधि से पृथक् किये गये फ़ास्फेट एस्टरों का मापन किया गया है।

पेनीसिलीन के प्रकार के यौगिकों के लिए ग्लिस्टर एवं ग्रेन्गर (३८) ने

1. Glycogen 2 Scanning devices 3. Wetra-violet
4. Fluorecence 5. Radio-active

एक जल्दी हो जाने वाली परिवर्तित विधि का वर्णन किया है। आपने व्हाटमैन नं० १ कागज को पोटैशियम फ़ास्फेट के ६.२ PH वाले प्रतिरोध-विलयन मे भिगो कर सुखाया। तत्पश्चात्, यौगिको को आरम्भ-रेखा पर लगा कर कमरे के ताप पर जल-सतृप्त डाइ एथिल ईथर विलायक को कागज पर दौडाया। आपने १ मिलीमीटर छिद्र वाली सूक्ष्म-पिपेटो का भी उपयोग किया। इनसे २-३ मिली-मीटर व्यास (लगभग २ माइक्रोलिटर) वाली बूँदे बनती थी। इनके प्रस्फुटन के लिए फव्वारे का प्रयोग नही किया गया, अपितु इनको *B. sultılıs* के स्पोरो से युक्त अगर[1] की प्लेटों पर रख दिया गया। स्ट्रिपो को इस प्रकार आधे घण्टे तक रखा रहने दिया जाता है। इस अवधि के पश्चात् पेनीसिलीन यौगिक कागज मे से प्लेट पर फैल जाते है। प्लेटो को २७° वाले ऊष्मक मे रात भर रखा जाता है। इन वैज्ञानिको ने ज्ञात किया कि मरे हुए स्पोरो के स्थान की चौडाई पेनीसिलीन के साद्रण के (खुराक की इकाई के आधार पर) लागैरिथ्म से सीधी समानुपाती होती है; अर्थात् यदि इन दोनो का ग्राफ वनाया जाये तो सीधी रेखा प्राप्त होगी। ध्यान दीजिए कि इस प्रयोग से वे ही फल प्राप्त हुए है जो इस अध्याय के आरम्भ मे वर्णित धब्बे के परिमाणात्मक मापन से प्राप्त हुए थे।

क्रमिक क्रोमैटोग्राम

जब व्हाटमैन काग़ज के पूरे ताव का उपयोग किया जाता है तो आरम्भ रेखा पर लगभग तीस बूँदे रखी जा सकती है। इस तथ्य को उपयोग मे लाकर किसी रासायनिक प्रतिक्रिया की समयानुसार प्रगति को जाँचा जा सकता है। इससे यह भी पता चलाया जा सकता है कि क्रोमैटोग्राफीय स्तम्भ मे विभिन्न पदार्थ निष्कासक में किस क्रम से बाहर निकलेंगे। इसके उदाहरण पुस्तक के अन्त मे दिये गये हैं।

साअ मान और रासायनिक रचना

कई दशाओ में कागज क्रोमैटोग्राम से रासायनिक पदार्थ की रचना को स्पष्ट करने में बहुत सहायता मिलती है। मार्टिन(३९) ने इस अनुमान से––किन्ही दो फंजो मे से एक मे किसी रासायनिक समूह (उदाहरणतया, CH_2 समूह) की

1. Agar

गति से सबधित स्वतन्त्र ऊर्जा परिवर्तन[1] अणुके अन्य समूहों से प्रभावित नही होता— निकलने वाले निष्कर्षो पर गवेषणा की इसके अनुसार पूरे अणु की पूर्ण स्वतन्त्र ऊर्जा अणु के विभिन्न समूहो की ऊर्जा को जोड़ कर निकाली जा सकती है। इससे यह स्पष्ट है कि एक सजातीय[2] श्रेणी के विभाजन-गुणक क्रमानुसार बढते जायेंगे; जैसे वे किसी दो विलायकों के बीच मे बढ़ जाते है। मार्टिन ने अपने पहले सूत्र का, जिसमे साभ्र मान का विभाजन-गुणक से सबंध स्थापित किया है, इस सिद्धान्त के लिए भी उपयोग किया। आपने इसकी सहायता से पेप्टाइडो के विभाजन-गुणक पहले से ही गणित द्वारा बता दिये। इसमें उपयुक्त नियताकों[3] की गणना के लिए आपको केवल कुछ अमीनो-अम्लो और कुछ पेप्टाइडो के विभाजन-गुणकों की आवश्यकता पड़ी। बाटे स्मिथ एवं वेस्टल (४०) ने यह भी सिद्ध किया कि यह नियम प्रकृति मे पाये जाने वाले उन यौगिको के, जिनका ढाँचा कार्बन के १५ पर-माणुओं से बना होता है, हाइड्राक्सिल और ग्लूकोज़ समूहो के लिए भी ठीक है। आपने यह भी दिखाया कि—

$$\text{सापेक्ष गति} \quad \text{साग} = \text{लॉग}\ \frac{१}{\text{साभ्र}} - १ \left(Rm = \log\frac{1}{R_F} - 1\right)$$

जब साग को प्रतिस्थापित[4] होने वाले समहों की संख्या के साथ ग्राफ़ में अकित किया गया, तो अनेक दशाओं मे सीधी रेखाएँ प्राप्त हुईं। इस सिद्धान्त के फलस्वरूप वे एक दशा में दो रासायनिक रचनाओं मे से एक को दृढतापूर्वक निश्चित भी कर सके। हाल में ही दो अमरीकी शोध-शालाओं (४१, ४२) ने मार्टिन के शोध-कार्य को पुष्ट किया है। वस्तुतः यहाँ के वैज्ञानिको का दावा है कि वह किसी भी इच्छित पेप्टाइड के साभ्र मान की ०.०५ यथार्थता के अन्दर गणना कर सकते है।

आइशरउड एवं जर्मिन (४३) ने कागज-क्रोमैटोग्राम मे शर्कराओं के आचरण से सादी शर्कराओं की रचना का इसी प्रकार के विवेचन से संबध स्थापित किया है।

भौतिक रसायनज्ञ कदाचित् साग मान और सुग्डेन के पैराकार[5] मे कुछ सबंध पायेंगे। आशा की जाती है कि जब कागज क्रोमैटोग्राम से अन्य रासायनिक यौगिकों के साग मान प्राप्त होगे तो उनसे उन यौगिकों के प्रस्तावित कई रचनात्मक सूत्रों[6] में से वास्तविक रचना सूत्र को स्थापित किया जा सकेगा।

1. Free energy change 2. Homologous 3. Constants
4. Substituent 5. Sugden's parachor 6. Structural formulae

अध्याय ४

स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफ़ी-अधिशोषण

अधिशोषक स्तम्भो पर निष्कासन द्वारा पृथक्करण क्रोमैटोग्राफी की सबसे पुरानी विधि है। इन विधियो पर काफी साहित्य वर्तमान है। जेखमाइस्टर (१०) ने इन सबको एक पुस्तक में एकत्र कर दिया है। इसमे उपयुक्त उपकरण सरलतम होता है। किन्तु जो पाठक इस पुस्तक द्वारा क्रोमैटोग्राफी का ज्ञान सबसे पहले प्राप्त कर रहे है, उनको यह बताना आवश्यक है कि इस विधि से क्या किया जा सकना है। इसका वर्णन इस अध्याय के पहले भाग मे किया गया है; दूसरे भाग में टिजेलियस और उप्सल मे कार्य करने वाले उनके सहकारियो के कार्य का वर्णन किया गया है। बाद मे इस विषय की नवीन बाते बतायी गयी है। टिजेलियस ने सक्रिय कार्बन को अधिशोषक की भाँति प्रयुक्त किया; उसका उपकरण सादा नही था। फिर भी इन लोगो ने अग्रभागीय विश्लेपण और विस्थापन-विधि को स्तम्भ क्रोमैटोग्राफी में सबसे पहले प्रयुक्त किया। आपके पश्चात् इस क्षेत्र मे अनेक विकास हुए।

पूर्वकालिक कार्य

जब १९३१ मे कूहन, विटरस्टाइन एव लेडेरर (१) ने जैथोफिल रग द्रव्यों का सफल पृथक्करण किया तो अधिशोषक[1] स्तम्भो की ओर अनेक शोध-कर्ताओं का ध्यान आकृष्ट हुआ। यह मालूम था कि विभिन्न पौधो की पत्तियो से तैयार की गयी जैथोफिलो का गलनाक (१९३°) और सापेक्ष घूर्णन[2] (एथिल ऐसीटेट मे १४५°) लगभग एक समान ही होता है। ज्वार से निकली मक्का-जैथिन[3] का गलनाक २०७° और सापेक्ष घूर्णन -५५° होता है। यह सन्देह किया जाता था कि

1. Adsorbent 2. Specific rotations 3. Zeaxanthin

अण्डे के योक का[1] पीला रंग-द्रव्य "लुटीन" वस्तुत. मिश्रण होता है क्योकि इसका गलनांक इन दो शुद्ध यौगिको के बीच मे होता है। लुटीन को केलासन द्वारा पृथक् करने की विधि असफल रही, अत इसके लिए स्वेट की स्तम्भ-विधि का प्रयोग किया गया।

उपर्युक्त प्रयोग मे स्तम्भ १५ सेमी० लबा और १ सेमी चौडा था। इसके नीचे रूई का पहल रख दिया गया और उसके ऊपर अवक्षेपित[2] खडिया भर दी गयी। "लुटीन" के नमूनो को कार्बन-डाइ-सल्फाइड में घोल कर स्तम्भ पर लगा दिया गया। और अधिक कार्बन-डाइ-सल्फाइड को डाल कर स्तम्भ का "प्रस्फुटन" किया गया। विलायक के नीचे बहने की गति को बढ़ाने के लिए स्तम्भ के निचले भाग मे हलका चूषण-पम्प[3] लगा दिया गया। जब प्रस्फुटन पर्याप्त हो गया तो पृथक् हुई पट्टियो को अधिशोषक स्तम्भ में से काट कर निकाल लिया गया। अधिशोषक मे से पट्टी बनाने वाले पदार्थ का मेथिल ऐलकोहल द्वारा निष्कासन कर लिया गया।

"लुटीन" दो पट्टियों में पृथक् होती थी। निचली पट्टी मक्का-जेथिम की होती थी और ऊपरी पट्टी पत्तियो के सार जैथोफिल से मिलती-जुलती थी। अत: इन वैज्ञानिकों ने प्रस्ताव किया कि "लुटीन" शब्द को अडे के यौगिक योक के अर्थ मे ही प्रयुक्त किया जाये।

स्ट्रेन (४४) ने जैथोफिलो के अन्वेषण के लिए अधिशोषक-स्तम्भो का बहुत अधिक उपयोग किया है। आम तौर से प्रयुक्त स्तम्भ २५ सेमी० लम्बा और ३ सेंमी० चौड़ा था। इसमे ९९ ग्राम मैग्नीसियम आक्साइड (Micron Brand No 2641, California Chemical Co., Newark, Calif.)और गरम की हुई सिलिकायुक्त मिट्टी ((Hyflo Supercel. F. A. ५०१), के बराबर मिले हुए मिश्रण को भरा गया। इसके ऊपर जो विलयन लगाया गया उसकी रचना यह थी—बीटा-कैरोटीन, क्रिप्टोजैथिन, लुटीन और मक्काजैथिन, प्रत्येक के १०० मिलीग्राम; और १० मिलीग्राम नियोजैथिन; इनको १४ मिलीलीटर १,२ डाइक्लोरो एथेन मे घोला गया। और अधिक डाइक्लोरो एथेन से निष्कासन किया गया। इससे ५ पट्टियां बनी जिनका ऊपर से नीचे क्रम यह था—नियोज़ैथिन, मक्का-ज़ैथिन, लुटीन, क्रिप्टोजैथिन और बीटा-कैरोटीन। बड़े

1. Yolk 2. Precipitated

स्पैचुला[1] को डाल कर ऊपर की दो पट्टिया निकाल ली गयी ; एथिल ऐलकोहल द्वारा निष्कासन करके जैंथोफिलो को अधिशोषक से पृथक् कर लिया गया। बाकी तीन पट्टियो के ऊपर एथिल ऐलकोहल डाला गया और उनको विभिन्न निष्कासित[2] मे एकत्र कर लिया गया। जिस क्रम मे पृथक्करण हुआ है उसी क्रम मे इन जैंथोफिलो की प्राप्त मात्रा (वर्णक्रम-अवशोषण द्वारा ज्ञात) इस प्रकार थी—५, ८५, ८५, ९० और ९० मिलीग्राम।

प्रस्फुटन के पहले मिश्रित जैंथोफिन स्तम्भ के १/६ भाग मे रहती थी। स्तम्भ मे पृथक्करण के लिए लगभग १/६ घंटे का समय लगता था।

स्ट्रेन ने इस विधि को कई प्रकार से किया। जिन विलायकों का उपयोग किया गया, वे ये थे—क्लोरोफार्म और पिरीडीन आंशिक रूप से सफल हुए, कार्बन डाइसल्फाइड मैगनीसिया पर विच्छेदित हो जाती थी, और बाजार में मिलने वाली गैसोलीन अधिशोषक को रंगहीन बना देती थी। विभिन्न अधिशोषक ये थे—कैलसियम कार्बोनिट पर काफी हलका[3] अधिशोषण होता था, सक्रिय एल्युमिना से ज़ैंथोफिल विच्छेदित हो जाते थे, शर्करा और मैग्नीशियम फास्फेट से पृथक्करण अपूर्ण होता था। जब मैगनीसिया पर एथिल ऐलकोहल की प्रक्रिया की जाती थी और उसे साधारण ताप पर सुखाया जाता था तो अधिशोषक निष्क्रिय बन जाता था। १००° पर सुखाने से अधिशोषक अर्द्ध रूप से सक्रिय बन जाता था; और ऊँचे ताप पर सुखाने से वह पूर्ण रूप से सक्रिय हो जाता था।

अभी जिन प्रयोगों का वर्णन किया गया, इनसे स्पष्ट है कि अधिशोषण क्रोमैटोग्राफ़ी कभी-कभी उन पदार्थो को पृथक् कर देती है जिनको अन्य विधियों से पृथक् नही किया जा सकता। इसके साथ-साथ इस विधि की दो ख़ामियां भी स्पष्ट होनी चाहिए। अनेक प्रयोग करने के पश्चात् उपयुक्त विधि का चयन हो पाता है, और स्तम्भ में पदार्थो की पूर्ण प्राप्ति[4] प्रायः नही हो पाती। कदाचित् यह आवश्यक है कि जब बहुत मात्रा मे अधिशोषक पर थोडे पदार्थो का अधिशोषण किया जायेगा तो उनकी प्राप्ति अपूर्ण ही रहेगी ; वह पूर्ण रूप से परिमाणात्मक कभी नही हो सकती।

1. Spatula 2. Eluate 3. Weak
4. Recovery

इस विधि से कार्य करने में दो और बातो पर विशेष ध्यान देना पडता है— मिश्रण मे सबसे कम मात्रा मे उपस्थित पदार्थो के पहचानने की विधि, और मिश्रण में सबसे अधिक मात्रा मे उपस्थित पदार्थ के अधिशोषण के अनुसार उपकरण की लम्बाई-चौड़ाई । इनके कारण यह विधि-कभी कभी असफल रह जाती है।

स्तम्भ-धारक[1]

अधिशोषक के स्तम्भ के लिए धारक बडा सरल होता है। इसके लिए शीशे अथवा पायरेक्स की नलिकाओ का उपयोग किया जा सकता है। इनका अदरूनी व्यास कुछ मिलीमीटर से लेकर कई सेटीमीटर तक हो सकता है। इस मे भरे अधिशोषक की लम्बाई व्यास की अपेक्षा पांच से दस गुनी होती है। अधिशोषक के नीचे साधारणतया किसी प्रकार का छिद्रनय तनुपट[2] होता है। किस भाँति के तनुपट का उपयोग किया जाये, यह स्तम्भ मे से अधिशोषक के निकालने की विधि पर निर्भर रहता है। यदि अधिशोषक की पूरी नलिका धारक मे से निकालनी है और उस पर पदार्थो की पहचान के लिए प्रस्फुटित करने वाले द्रव से भीगे ब्रुश को फेरना है, या निकाले हुए अधिशोषक को विभिन्न टुकड़ो में काटना है तो एक चपटे तनुपट का (जो चलायमान हो किन्तु जिसके घसिटने मे कठिनाई न हो) उपयोग किया जा सकता है। यह नलिका के निचले सँकरे भाग में रहता है। जेखमाइस्टर ने इस कार्य के लिए पोर्सिलेन की बनी छननी-प्लेट का कपड़ा लपेट कर तनुपट के रूप मे उपयोग किया। इस विधि से तनुपट के पश्चात् निष्कासित नीचे की सँकरी नलिका मे किनारे से गिरता रहता है नलिका के अन्त मे यदि उपयुक्त कोण पर घिस कर उचित प्रकार का छेद बना दिया जाये तो इसमे से निष्कासित बूँद बूँद बन कर बाहर निकलता रहता है। यदि निष्कासन-विधि से पृथक् हुए द्रवों के विभिन्न नमूनो को पूर्ण रूप से एकत्र करना है तो अधिशोषक को स्तम्भ मे किसी सुगमतर विधि से रोका जा सकता है। नलिका के निचले सिरे को सँकरा[4] बनाया जा सकता है। या इसे किसी पतले छिद्र वाली दूसरी नली से जोडा जा सकता है। इन दोनो दशाओ मे सँकरे

1. Column Containers
2. Porous dıaphragm
3. Filter-plate
4. Constricted

सिरे पर शीशा-ऊन[1] की डाट[2] को लगा देने से काम चल जाता है। इस डाट की ऊपरी सतह को जो अधिशोषक से छूती रहती है, चपटा होना चाहिए। यदि नलिका के सकरे सिरे को कोन की शक्ल का बनाया जाये जिसका अर्द्ध-कोण ४५° से कम हो तो शीशे-ऊन की डाट लगाने मे सरलता होती है। जब शीशे-ऊन को स्तम्भ मे भर दिया जाता है तो उसके फुचरे ऊपर निकले रहते है। इनको बनाने के लिए शीशे की गोल छड के सिरे पर एक वर्ग काट लेना चाहिए और उसके थोडे भाग को निकले रहने देना चाहिए। जो भाग बाहर निकला हुआ है उसको पैना होना चाहिए। इस छड़ को स्तम्भ मे डाल कर शीशे-ऊन को ठीक तरह से दबाने पर फुचरे कुचल कर ठीक से डाट बना देते है। इस प्रकार अधिशोषक को स्तम्भ मे रोकने की विधि से स्तम्भ के नीचे द्रव का आयतन काफ़ी रहता है क्योकि इसमें छनने की गति तेज रहती है। अतः इससे निष्कासित के विभिन्न अशो के मिश्रण की सभावना रहती है। यह अधिक महत्त्व की बात नही है क्योकि साधारणतया एक पदार्थ के पृथक्करण के पूर्ण होने के पूर्व दूसरे पदार्थ का पृथक्करण आरम्भ हो जाता है और इस प्रकार पदार्थो के पृथक् होते समय निष्कासित मे केवल एक ही पदार्थ नही रहता।

स्तम्भो का भरना

पहले, शोधकर्त्ता सूखा चूर्ण थोडी-थोडी मात्रा मे डाल कर स्तम्भ को भरते थे। हर बार डाली हुई चूर्ण की मात्रा को हिला कर नीचे कर लिया जाता था, या उसे अच्छी तरह दबा दिया जाता था। दबाने के लिए लकड़ी अथवा शीशे की छड के नीचे कोई चपटी डिस्क[3] लगी रहती थी। कुछ शोधकर्त्ता नलिका के किनारे को अगुली से ठुकराते थे, जिससे चूर्ण नीचे बैठ जाये; कुछ लोग नलिका के नीचे हलका चूषण-पप लगा देते थे जिससे वातावरण के दाब से चूर्ण नीचे बैठ जाये।

बाद में चूर्ण के स्थान पर उपयोग मे लाये जाने वाले विलायक में चूर्ण को आलम्बित[4] कर लिया गया। इन सब विधियो का उद्देश्य यह था कि तैयार किये स्तम्भ पर द्रव के बहने की गति सम होनी चाहिए जिससे पृथक् होने वाले पदार्थ

1. Glass-wool 2. Plug 3. Disc 4. Suspended

चपटे क्षैतिज टुकडों में पृथक् हो। विभिन्न सतहो में अधिशोषक के होने से कोई विशेष हानि नही होती थी। किन्तु यदि ये सतहे चपटी न हों तो उस से पदार्थो के पृथक्करण मे बाधा पडती थी। किसी एक विधि का उपयोग करके स्तम्भ का भरना सतोषजनक नही होता था। कभी-कभी क्रोमैटोग्राम बनने के बाद नलिका के बीच में लम्बी नाली-सी दिखाई पडती थी , कभी-कभी क्रोमैटोग्राम मे पदार्थ टेढी पट्टियो मे पृथक् होता था अथवा पृथक् हुए पदार्थ एक दूसरे से मिल जाते थे। इनका कारण अधिशोषक के विभिन्न भागो का समतल न होना है। कुछ अधिशोषको का चूर्ण बडा महीन होता है और इसके कारण विलायक के बहने की गति धीमी पड जाती है। निचले सिरे पर वायु-चूपण[1] से गति को बढाने मे सहायता मिलती है, किन्तु इसका उपयोग करते समय बडी सावधानी बरतनी चाहिए। कभी-कभी चूपण की गति तेज हो जाती है, तब बाहर निकलते हुए विलायक मे से हवा के बुलबुले भी निकलते है , इससे विलायक के समरूप से बहने मे बाधा पडती है। चूषण द्वारा दाब मे अन्तर बहुत धीरे-धीरे करना चाहिए, नही तो कभी कभी-गीले अधिशोषक को धक्का लगता है, जिससे सफल क्रोमैटोग्राम नही बन पाते।

अधिशोपक भरे स्तम्भ मे यदि गैस के बुलबुले रह जाते है तो इससे विलायक की गति सम नहीं रह पाती। सूखे चूर्ण से भरे स्तम्भो मे सदैव आशका रहती है कि उनमे कही हवा के बुलबुले न हों। कभी कभी "गैस-रहित" एथिल ऐलकोहल के प्रयोग से स्तम्भ के अधिशोषक मे घुले हवा के बुलबुले नप्ट हो जाते है। जब स्तम्भ को विलायक में आलम्बित चूर्ण से भरा जाता है तो गैस के बुलबुलो के होने की सभावना तो कम हो जाती है, किन्तु चूर्ण के बैठने की गति मे विभिन्नता होने और द्रव मे भँवर पडने के कारण अधिशोषक की असमता एव उनमे विभिन्न स्तम्भो के बनने की सभावना बढ जाती है। अच्छा यही है कि स्तम्भ भरते समय आलम्बित चूर्ण को एक बार डाल कर पूरे विलायक को नीचे बहने दिया जाय। इससे भँवर कम बनते है और अधिशोपक युक्त आलम्बित द्रव मे गति भी कम हो जाती है। स्तम्भ भरते समय यदि चूर्ण को बराबर हिलाते रहा जाये तो उससे कई बार स्तम्भ को भरने के कारण जो सतहें बनती है, वे भी कम हो जाती है।

1. Air-Suction

स्तम्भ को भरते समय ये जितनी भी कठिनाइया है वे ऐसे अधिशोषक के चूर्ण को काम मे लाने से कम हो जाती है जिसके कण लगभग एक आकार के हो। कणो को एक आकार का बनाने के लिए चलनी का उपयोग किया जाता है। दुर्भाग्यवश, जिन अधिशोषको का स्तम्भ मे उपयोग होता है वे चलनी से साधारणतया नही छाने जा सकते क्योकि वे अत्यधिक महीन होते है। कणो को सम आकार का बनाने के लिए तलछटीकरण[1] अथवा द्रव की धारा से चूर्ण को ऊपर खिसका कर धोने की विधि भी काम मे लायी जाती है, किन्तु इन विधियो को व्यवहार मे नही लाया जा सकता क्योकि प्रयोग के पहले अधिशोषक को गरम करके सक्रिय बनाना पड़ता है।

स्तम्भों के असतोषजनक परिणाम का एक कारण और भी है और वह यह कि अधिशोषक स्तम्भ में कुछ समय रहने के बाद सिकुड़ जाता है। उनके अधिशोषको मे अधिशोषित जल होता है और विलायक में उपस्थित जल द्वारा इस अधिशोषित जल की मात्रा में अन्तर पड जाता है। यदि स्तम्भ के अधिशोषक मे जल है और अजलीय विलायक का उपयोग किया गया है तो जल विलायक मे घसिट आता है और स्तम्भ कुछ हद तक सिकुड जाता है। यह कठिनाई कभी-कभी बड़ा गम्भीर रूप धारण कर लेती है। विलायक के बह चुकने के बाद अधिशोषक में से जल निकल जाता है और उसकी मात्रा कम हो जाती है। किन्तु अधिशोषक के कणो में जो आपसी आकर्षण होता है उससे वे एक दूसरे से तो चिपटे रहते है, किन्तु उनके बाहरी आयतन मे कमी हो जाती है। फलत.; नलिका के किनारे स्थान रिक्त हो जाता है। यदि विलायक ऊपर रह गया है तो यह इस रिक्त स्थान मे से जल्दी निकल जाता है और अधिशोषक बिना प्रक्रिया के पड़ा रहता है। जब ऐसा होता है तो बाहर से ऐसा मालूम पडता है कि पृथक्करण बडा सफल हुआ है क्योकि पृथक् हुए पदार्थो की चपटी पट्टिया दिखाई देती है, किन्तु जब अधिशोषक की नलिका को बाहर निकाल कर पट्टियो को काटा जाता है तो पता चलता है कि चपटी पट्टी के ऊपर अधिशोषक के बीच मे पृथक् हुए पदार्थ की पतली लकीर ऊपर चली गयी है जो चारों ओर अधिशोषक होने के कारण छिपी हुई थी।

1. Sedimentation

परख द्रव का लगाना

जब स्तम्भ पर लगाये परख-द्रव की पट्टी पतली होती है तो प्रस्फुटित क्रोमैटोग्राम साफ और किनारों पर नुकीला होता है। अधिशोषक के ऊपरी भाग को बिल्कुल चपटा होना चाहिए और जब परख-द्रव डाला जाये तो उसे बिगड़ना नही चाहिए। कुछ शोध-कर्त्ता अधिशोषक के ऊपरी भाग को दबा देते है जिससे उसकी ऊपरी सतह सख्त और चपटी हो जाये। कुछ लोग उसके ऊपर छनने कागज का एक पतला टुकडा रख देते है, जिससे कि परख-द्रव की गिरने वाली बूंद ऊपरी सतह को सुरक्षित रखे। जब द्रव तेजी से एकदम डाला जाता है तो भी इससे सतह की थोडी रक्षा हो जाती है। सबसे अच्छा तरीका यह है कि स्तम्भ के ऊपर प्रयुक्त विलायक की थोडी मात्रा को रहने देना चाहिए और स्तम्भ को कभी सूखने नही देना चाहिए। परख-द्रव लगाने के पहले विलायक को स्तम्भ मे नीचे बहने देना चाहिए। जैसे ही उसकी सतह अधिशोषक पर से हटती नजर आये तो परख-द्रव को लगा देना चाहिए।

परख-पदार्थो का विलयन अधिकतम सांद्रण मे होना चाहिए, किन्तु इसका सांद्रण इतना अधिक न हो कि अवक्षेपण की संभावना रहे। अवक्षेपण से स्तम्भ की कार्य-विधि मे बाधा पड सकती है। परख-द्रव को एक पिपेट में भर लिया जाता है। इस पिपेट का निचला भाग इस तरह मुडा होता है कि वह स्तम्भ के अन्दर डाली जाने पर नलिका के किनारे को छूती रह कर अधिशोषक से जरा ऊपर रहे और उसको छू न पाये। परख-द्रव को तब तक बहने दिया जाता है जब तक कि वह लगभग समाप्त न हो गया हो और उसकी सतह अधिशोषक के कणों से टूटने वाली हो। परख-द्रव की सारी मात्रा इसी भाँति थोडी-थोड़ी करके लगायी जा सकती है, जब तक कि सारा परख-द्रव स्तम्भ पर अधिशोषित न हो जाये। अब परख-पदार्थ एक या दो मिलीमीटर सॅकरी पट्टी के रूप मे अधिशोषक की ऊपरी सतह से थोडा नीचे लग जाता है।

क्रोमैटोग्राम का प्रस्फुटन

अधिशोषक के ऊपर स्तम्भ मे रिक्त स्थान को शुद्ध विलायक से भर दिया जाता है और उसको नीचे बहने दिया जाता है। विलायक विभिन्न गतियो से विभिन्न पदार्थो को स्तम्भ मे नीचे बहा ले जाता है। वस्तुत यह निष्कासन-विधि है और जैसे-जैसे प्रयोग चलता रहता है, वैसे-वसे पदार्थो की पट्टिया और उनके बीच

की दूरी बढ़ती जाती है। साधारणतया पट्टी के पिछले (ऊपरी) भाग की अपेक्षा निचले किनारे (अग्रभाग) पर पदार्थ का सांद्रण अधिक होता है। इसका कारण बाद में बताया जायेगा। पिछले भाग मे साद्रण इतना कम होता है कि वह सूक्ष्म मात्रा मे लकीरे अथवा विभिन्न सतहें बना देता है। साधारणतया, एक पदार्थ के पूर्ण रूप से पृथक् होने के पूर्व ही दूसरा पदार्थ पृथक होने लगता है। ऐसी स्थिति मे पट्टी का कम साद्रण वाला ऊपरी भाग दूसरे पदार्थ की पट्टी से मिल जाता है और उसके पृथक्करण मे बाधा डालता है। अच्छे क्रोमैटोग्राफीय पृथक्करण की सफलता के लिए उपयुक्त विलायको और अधिशोषको का ज्ञान होना चाहिए और इसके लिए प्रायोगिक अनुभव की भी आवश्यकता है।

इन विधियो द्वारा कार्य करने वाले कभी-कभी "सा"[1] मान का जिक्र करते है। यह "सा" मान इस प्रकार प्राप्त किया जाता है—पट्टी के बीच वाले हिस्से की गति को विलायक की सतह के अधिशोषक मे नीचे धँसने की गति से भाग दे दिया जाता है। यह विधि ठीक नही है, क्योकि यह मान वस्तुत· स्तम्भ मे द्रव आयतन और ठोस आयतन के अनुपात पर निर्भर होता है और यह विधि स्तम्भ मे पदार्थ के भरने के घनत्व पर निर्भर रहती है। दूसरी बात यह है कि विलायक की नीचे धँसने वाली सतह को ठीक ठीक बताना भी सभव नही है। जहाँ सभव हो, वहाँ मार्टिन द्वारा बताये साश्रा मानो का उपयोग करना चाहिए। "सा" मान का केवल एक महत्त्व है और वह यह कि दूसरो द्वारा किये गये प्रयोगों से अपने प्रयोगों की तुलना की जा सकती है।

यदि स्तम्भ-धारक मे से खाली अधिशोषक नलिका को बाहर निकालना हो तो विलायक को काफी देर बहने दिया जाता है जिससे पट्टियो का पृथक्करण पर्याप्त रूप से हो जाये। ऐसा करने में दुबारा विलायक डालने के पहले विलायक की सतह को अधिशोषक में थोडा नीचे चला जाने दिया जाता है। इस प्रकार थोड़ी-सी हवा भी स्तम्भ के अन्दर पहुँच जाती है। इस से अधिशोषक स्तम्भ और अधिक समाग[2] हो जाता है , दुबारा विलायक डालने के पहले, डाले गये अधिशोषक मे कितना धँसने दिया जाये यह बार-बार प्रयोग करने पर अनुभव से ही ज्ञात होता है। जब पट्टियो को काट कर अलग करना हो अथवा रंगहीन

1. "R" 2. Coherent

पट्टियों को पहचानने के लिए प्रस्फुटित करने वाले द्रव से भीगे ब्रुश को चलाना हो तो सारे स्तम्भ को बाहर निकालने की आवश्यकता पड़ती है।

यदि निष्कासन बहुत देर तक होता है तो पृथक् हुई सारी पट्टिया धीरे-धीरे स्तम्भ के निचले भाग तक जा पहुँचती है, यदि विलायक को और अधिक देर तक नीचे बहने दिया जाये तो ये पट्टियां विलायक में घुल कर बाहर आ जाती है। एकत्रक को बदल कर इन घुली हुई पट्टियो को विभिन्न पात्रो मे भरा जा सकता है और इच्छानुसार उनका उपयोग किया जा सकता है।

एक ही स्तम्भ को कई बार प्रयुक्त किया जा सकता है, किन्तु दो बाते ध्यान में रखनी चाहिए। एक तो स्तम्भ के अधिशोषित पदार्थ विलायक द्वारा परिमाणात्मक रूप मे बाहर निकल जायें ऐसा बहुत कम होता है; अतः द्वारा पृथक्करण के लिए थोड़े मिश्रण से स्तम्भ की पहले जॉच कर लेनी चाहिए। दूसरे, यदि यह सावधानी न रखी जाये कि अधिशोषक मे जल की उपयुक्त मात्रा वर्त्तमान है तो अधिशोषक की सक्रियता मे अन्तर पडता है। यह भी सभव है कि प्रायोगिक अशुद्धिया स्तम्भ में अधिशोषित हो कर स्तम्भ के अधिशोषक गुण-धर्मो पर प्रभाव डाले।

अधिशोषण क्रोमैटोग्राफ़ी द्वारा पृथक् हो सकने वाले पदार्थ

इस अध्ययन मे वर्णित विधियो का अनेक प्रकार के यौगिकों के पृथक्करण में उपयोग किया गया है। उदाहरणतया, जेखमाइस्टर (१०) ने इन यौगिकों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है—स्टीरोल और स्टीर्वायड, टर्पीन और इससे सबधित यौगिक, ऐल्केलॉयड, विटामिन, ऐंटीबायोटिक, आदि। जैसा अधिशोषण-प्रक्रिया से अनुमान लगाया जा सकता है, यह विधि उन यौगिको के लिए बहुत उपयोगी है, जिनके अणुओ मे परमाणुओ की सख्या बहुत अधिक होती है। जेखमाइस्टर का कहना है, बहुत प्रयास करने पर भी ऐसी कोई सर्व व्यापी स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफी की विधि ज्ञात नही है जिससे धन आयनो के मिश्रण का विश्लेषण एव परिमाणात्मक परिमापन हो सके। श्वाब (४५) ने धातुओ को, अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी द्वारा पृथक् करने के पूर्व, साधारण विश्लेपक वर्गो (**pb, Ag, Hg^{+}** आदि) मे पृथक् कर लिया।

विलायक

इनका चयन पृथक् किये जाने वाले पदार्थो की प्रकृति पर काफी हद तक

निर्भर होता है। अच्छे विलायक मे ये गुण होने चाहिए—अधिशोषक के गुण-धर्मों पर कोई सीधा प्रभाव न हो; बहुत अधिक श्यानता[1] न हो, अन्यथा इससे स्तम्भ मे विलायक के बहने की गति काफी धीमी हो जाती है, और पृथक् किये गये पदार्थो को विलायक मे से आसानी से निकल आना चाहिए। विलायकों के चयन के समय पारविद्युत नियताको[2] की सारणी को देख लेने से लाभ होता है। इससे इच्छानुसार "ध्रुवीय" विलायको को चुना जा सकता है। आम तौर से अधिक ध्रुवीय विलायक का निष्कासन पर तेजी से प्रभाव होता है। अर्थात् वह शीघ्र और अधिक पूर्ण होता है। अतः यदि किसी विलायक से असुगम "सा" मान प्राप्त होता है तो उसकी अपेक्षा अधिक ध्रुवीय विलायक को लेने पर "सा" मान सुगम (ऊचा) हो सकेगा।

कई विलायको के क्रमानुसार प्रयोग से भी पदार्थो को पृथक् किया गया है—इसको "अंशीय निष्कासन"[3] कहते है। राइखश्टाइन एवं शाप्पे (४६) ने स्टीरॉयडो के पृथक्करण के लिए इस विधि का उपयोग किया। स्मिट (४७) ने स्नेहक[4] तेल के हाइड्रोकार्बनो को भी इसी भांति पृथक् किया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि विलायको को अधिशोषक स्तम्भ पर से चला लिया जाये तो वे शुद्ध हो जाते है।

अधिशोषक

एल्यूमिना सबसे अधिक प्रचलित अधिशोषक है। सिलिका, मैग्नीशियम आक्साइड और सेल्युलोज का भी अनेक प्रयोगो में उपयोग किया गया है। प्राय. अधिशोषकों को उपयोग के पहले "सक्रिय" बनाना पड़ता है। उदाहरणतया, एल्यूमिना को ३६०° तक पॉच घंटे गरम करना पड़ता है। ठडा करने के बाद जेखमाइस्टर ने पिपेट द्वारा थोड़ा जल डाला और मशीन से दो घंटे तक पात्र को हिला करके एल्यूमिना और जल को सजातीय बना लिया। आपका कहना है कि ० ५—१ प्रतिशत तक जल एल्यूमिना की सक्रियता को काफ़ी प्रबल बना देता है। किन्तु यदि जल की मात्रा को 'कई प्रतिशत से २० प्रतिशत तक'

1. Viscosity　　1. Dielectric Constants
3. Fractional elution　　4. Lubricating

बढ़ा दिया जाये तो उसका असर कम हो जाता है। स्टीवर्ट (४८) ने ऐन्थाक्वीनोन यौगिको के पृथक्करण के समय इस का विस्तार पूर्वक अन्वेषण किया।

ज़ेखमाइस्टर ने एल्यूमिना की सक्रियता का लक्षण-निर्धारण करने के लिए ब्राकमैन एव शाडर की विधि का वर्णन किया है। इसका यहाँ पर वर्णन किया जायेगा, क्योकि शोध-साहित्य मे इस विधि का काफी जिक्र आता है। सक्रियता की पाँच कोटियां[1] बतायी गयी —

I—सबसे अधिक सक्रिय,

II—I से कम सक्रिय,

III—II से कम सक्रिय,

IV—III से कम सक्रिय, एव

V—सबसे कम सक्रिय।

इन पर क्रमानुसार ये ऐजो—रग अधिशोषित होते है—पैरा हाइड्राक्सी ऐज़ो बेजीन, पैरा अमीनो ऐजो बेजीन, सूडान रेड, सूडान येलो, पैरा मेथाक्सी ऐज़ो बेज़ीन और ऐजो बेजीन। एल्यूमिना के किसी नमूने के परीक्षण के लिए उसको १.५ सेंमी० व्यास वाले और ५ सेमी० लम्बे स्तम्भ मे भरा जाता है। अधिशोषकों के नीचे रूई-ऊन की डाट लगा दी जाती है और उसके ऊपर छनने काग़ज़ की पतली डिस्क रख दी जाती है। उपर्युक्त रगों की २ मिलीग्राम मात्रा को शुद्ध बेज़ीन (पोटेशियम हाइड्राक्साइड) पर आसुत की २ मिली मीटर मात्रा में घोल लिया जाता है। इसके पश्चात्, ऊपर दिये हुए क्रम के अनुसार दो रगों के मिश्रण को स्तम्भ पर लगाया जाता है। तत्पश्चात्, पहले ८ मिलीमीटर लाइट पेट्रोलियम और उसके बाद बेजीन और लाइट पेट्रोलियम के मिश्रण को (आयतन के अनुसार ४:१ अनुपात मे) स्तम्भ पर बहने दिया जाता है। कोटि 1 के एल्यूमिना में पैरा मेथाक्सी ऐजो बेजीन ऊपर अधिशोषित होती है और एजो बेंज़ीन नीचे कोटि II में पैरा मेथाक्सी ऐजो बेजीन नीचे अधिशोषित होती है और सूडान येलो ऊपर; ऐजो बेजीन का अधिशोषण ही नही होता। इसी प्रकार कोटि V तक लक्षण-निर्धारण किया जा सकता है। कोटि V वाले एल्यूमिना के स्तम्भ मे पैरा हाइड्राक्सी एजो बेजीन ऊपर अधिशोषित होती है और

1. Grades

का विकास किया जा रहा था, तो टिजेलियस और उनके साथियों (५२,५३) ने अग्र-भागीय विश्लेपण और विस्थापन की विधियो का विकास किया। टिजेलियस ने सक्रिय कार्बन पर अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफ़ी का उपयोग किया। आपने स्तम्भ के द्रव निष्कासितो[1] के वर्तनाको[2] का परीक्षण किया। चूकि एक विलयन के वर्तनाक का विलयन मे घुले विलयशील के सान्द्रण से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, अत इस विधि से रगहीन द्रव्यो के सान्द्रण का परिमापन किया जा सका।

इसमे जिस यत्र का उपयोग किया गया वह सरल नही है। अत. उसका विस्तारपूर्वक वर्णन नही किया जा रहा है, क्योकि सरल विधि ढूँढने वाले शोध-कर्त्ता के लिए यह विधि उपयुक्त नही है। तथापि, टिजेलियस के कार्य ने क्रोमैटोग्राफी के आधुनिक क्षेत्रो का आरम्भ किया और इसलिए उसकी विधियो का कुछ वर्णन अवश्य करना चाहिए।

अपने आरंभिक प्रयोगो मे टिजेलियस ने "श्लीरेन" प्रकाशीय विधि[3] का उपयोग किया, इसका कलिल-कणों[4] का चार्ज जानने वाले प्रयोगों मे उपयोग किया जाता है। इस विधि मे परीक्षण-सेल अथवा "क्यूवेट"[5] मे द्रव होता है, जो विभिन्न घनत्व वाली परतो मे पृथक् हो जाता है। विभिन्न परतों के वर्तनाको में भी अन्तर होता है और इस कारण जब प्रकाश की समातर किरणे इस सेल पर छोड़ी जाती है तो उनमे वर्तन हो जाता है। ऐसा तभी होता है जब घनत्व के अनुसार परते ठीक तरह से पृथक् हुई हो और उन सबके ऊपर सब से अधिक घनत्व वाले द्रव की परत हो; अन्यथा, संवहन[6] द्वारा मिश्रण हो जाता है। इसमे बचने के लिए टिजेलियस ने सबसे पहले स्तम्भ मे विलायक को जोर से ऊपर फेक कर शुद्ध विलायक को सेल मे ले लिया। इसके बाद जब स्तम्भ पर पहली पट्टी बनी तो उच्चतर घनत्व वाले द्रव की सेल मे परत बन गयी। विस्थापन एव अग्रभागीय विश्लेषण विधियो का विकास इसलिए करना पड़ा क्योकि साधारण निष्कासन से दो पट्टियो के बीच मे शुद्ध विलायक बाहर निकलता है

1. Eluate
2. Refractive index
3. "Schlieren" optical method
4. Colloidal particles
5. Cuvette
6. Convection

और इसका घनत्व कम होने के कारण सवहन द्वारा सेल मे द्रवों की विभिन्न परतें मिल जाती है। टिजेलियस ने यह दिखा दिया कि मिश्रित शर्कराओ, मिश्रित अम्लो, और मिश्रित अमीनो-अम्लो को सक्रिय-कार्बन पर उनके अवयवो मे पृथक् किया जा सकता है। जैसा पहले अध्याय मे बताया जा चुका है, विस्थापन द्वारा अवयवो का भली-भाँति पृथक्करण नही हुआ, क्योकि क्रोमैटोग्राम पर पट्टी एक दूसरे से मिली-जुली थी, इस मिश्रण को विधि मे उपयुक्त परिवर्त्तन करके कम किया जा सकता है।

बाद मे "श्लीरेन" विधि के स्थान पर हस्तक्षेप-मापी[1] विधि का उपयोग किया गया। क्लेसन (५४) ने इस विधि का वर्णन किया है। इस मे परीक्षण सेल एक केश-नली थी जो ८×०.१४ व्यास सेमी० की थी। इसके अंदरूनी भाग पर सोने के कणों की महीन परत समान रूप से बनी थी और यह इतनी छोटी थी कि इसके उपयोग से निष्कासन बिना अधिक मिश्रण के होता था। दशमलव के पाँचवे स्थान पर भी यदि वर्तनाक मे अन्तर होता था, तो उसको मापा जा सकता था; पर इसके लिए एक डिग्री के सौवे भाग तक ताप का नियत्रण करना पडता था।

स्तम्भ अथवा "छनने"[2] धातु के बने होते थे और कई स्तम्भों को एक साथ पेंच से कसा जा सकता था। इसका कारण अगले अध्याय मे बताया जायेगा, पर यहाँ यह बताना आवश्यक है कि ऐसा करने से पृथक्करण अच्छा होता है। इस प्रयोग में कम आयतनों का उपयोग किया जाता था; और इनका साधारणतया व्यास १.२५×०.४ सेमी. से लेकर १०×१ सेमी. तक होता था। उनमें जो सक्रिय कार्बन भरा जाता था, उसके कण ५—४० माइक्रान के होते थे। विलायक के बहने की गति को तेज करने के लिए तीन वातावरण[3] तक का दाब रखा जाता था।

इन विधियो से स्तम्भ पर कार्य करने की विधि को बताना आवश्यक है। जब एक विलयशील वाले विलयन को स्तम्भ मे लगाया जाता है और विलयशील के साद्रण एव विलयन के आयतन को निष्कासित मे मापा जाता है, तो यह ज्ञात होता है कि पहले शुद्ध विलायक निकलता है। जब उसका एक निश्चित आयतन

1. Interferometer 2. Filters 3. Atmosphere

निकल चुकता है तो निष्कासित मे विलयशील का सांद्रण एकदम बढ जाता है; यह तब तक स्थिर रहता है जब तक विलयन निकलता रहता है। स्पष्ट रूप से सांद्रण का नियतांक वही है जो सांद्रण मूल विलयन का होता है। प्रयोग मे उपयुक्त शुद्ध विलायक के पूर्ण आयतन को "ग्रहण-आयतन" [1] कहते है। जब ग्रहण-आयतन मे से उपकरण एव अधिशोषक में चिपके रह जाने वाले द्रव के आयतन को निकाल दिया जाता है तो उसे "सही ग्रहण-आयतन" [2] कहते है। प्रति ग्राम अधिशोषक के सही ग्रहण आयतन को "सापेक्ष ग्रहण-आयतन" [3] कहते है। इन शब्दों का अग्रभागीय विश्लेषण एवं विस्थापन-प्रस्फुटन दोनों मे उपयोग होता है।

जब सापेक्ष ग्रहण-आयतन को साद्रण से गुणा किया जाता है तो प्रति ग्राम अधिशोषक पर अधिशोषित विलयशील की मात्रा ज्ञात हो जाती है। जब विभिन्न सांद्रण वाले विलयशीलो से प्रयोग किये जाते हैं तो अधिशोषण "समताप-वक्र" [4] को खीचा जा सकता है।

चिपके रह जाने वाले द्रव के आयतन को निकालने की दो विधिया है—एक तो यह कि सूखे अधिशोषक और खाली स्तम्भ को तौल लिया जाये और बाद मे गीले स्तम्भ को तौल लिया जाये। इस प्रकार सही करने वाला मान प्राप्त हो जाता है, यदि विलायक का घनत्व ज्ञात है। दूसरी विधि यह है कि ऐसे विलयशील से प्रयोग किया जाये जो स्तम्भ मे भरे अधिशोषक द्वारा अधिशोषित नही होता। इस प्रकार निष्कासित मे शुद्ध विलायक का जो आयतन होता है वही सही ग्रहणं-आयतन है।

अग्रभागीय विश्लेषण

विलयशील (क) और (ख) वाले एक विलयन को लीजिए। यदि (ख), (क) की अपेक्षा मजबूती से अधिशोषित होता है और यदि उनके साद्रण सा$_{क}$ और सा$_{ख}$ हैं तो निष्कासित को तीन भागों मे बॉटा जा सकता है। पहले तो शुद्ध विलायक का आयतन आ$_1$ निकलता है, तत्पश्चात् आ$_2$—आ$_1$; इसमे

1. Retention Volume 2. Corrected Retention Volume
3. Specific retention volume 4. Isotherm

केवल (क) होता है। आ$_२$ से बड़े आयतन में (क) और (ख) दोनों होते हैं और इनका साद्रण वही होता है जो मौलिक विलयन का था।

सरलता की दृष्टि से, मान लीजिए कि आ$_१$ और आ$_२$ सही ग्रहण-आयतन है। अब स्पष्ट है कि स्तम्भ पर अधिशोषित (ख) की मात्रा आ$_२$ सा$_ख$ है।
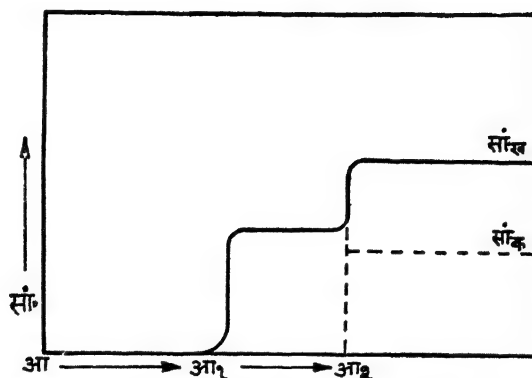
चित्र १३—अग्रभागीय विश्लेषण में दो विलयशीलों का पृथक् होना

स्तम्भ पर अधिशोषित (क) की मात्रा आ$_२$ सां$_ख$ —(आ$_२$ —आ$_१$) सां. है, जहाँ सा. आयतन (आ$_२$-अ$_१$) का साद्रण है।

यदि मिश्रित विलयशीलो के अधिशोषण समताप-वक्र ज्ञात है, तो सां० की गणना की जा सकती है। जब तीन या उससे अधिक विलयशील होते है तो स्थिति काफी जटिल हो जाती है। परिमाणात्मक दृष्टि से ऐसा लगता है कि मिश्रित अधिशोषण समताप-वक्रो के निर्धारण में अग्रभागीय विश्लेषण से, उसकी उल्टी विधि की अपेक्षा, सा० के मापित मानों से अधिक सहायता मिलती है। एक विशेष पदार्थ के साथ क्लेसन ने यह दिखा दिया कि यदि यह मान लिया जाये कि लैंगम्योर[१] के अधिशोषण-समीकरण को इस प्रयोग मे लगाया जा सकता है तो उपयुक्त सूत्र को ज्ञात किया जा सकता है। आपने सिद्ध कर दिया है कि दो और कभी-कभी तीन सजातीय पदार्थों, जैसे, वसीय अम्ल, की सक्रिय कार्बन पर प्रतिक्रिया वैसी ही होती है जैसी उन्होने गणना करके बतायी थी।

1. Langmuir

शेपर्ड एव टिज़ेलियस (५५) ने कुछ प्रोटीन विलयनों का जो सफल अग्र-भागीय विश्लेषण किया उसमे सिलिका-श्लिषि और सुपरसेल[1] का अधिशोषक की भाँति प्रयोग किया गया था। इसमे विलायक एक फास्फेट-प्रतिरोध था जिसमे कीटाणु-वृद्धि को रोकने के लिए फार्मैलीन मिला दी गयी थी।

अग्रभागीय विश्लेषण इस दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है कि उससे ज्ञात होता है कि स्तम्भ पर परख-द्रव को लगाने के लिए विलयशीलो की दशा कैसी होनी चाहिए और उनको किस अवस्था मे होना चाहिए।

अधिशोषण द्वारा विस्थापन-क्रोमैटोग्राफ़ी

क्लेसन ने सक्रिय-काठकोयले पर अधिशोषण द्वारा द्रव विलायकों को लेकर विस्थापन-विधि का प्रयोग करना चाहा। अन्य अधिशोषको पर भी ये प्रयोग किये गये। अन्य शोध-कर्त्ताओ की भाँति आपने यह ज्ञात किया कि वसीय अम्लों का अधिशोषण इतना मजबूत होता है कि उनको अधिशोषक से दुबारा नही निकाला जा सकता। फलतः, इन पदार्थो के साथ विस्थापन-विधि असफल रहती है। सामान्यतः निष्कासन विधि का भी इसमें उपयोग नही किया जा सकता। क्लेसन ने ट्राप्पे[2] का उद्धरण दिया है। ट्राप्पे महोदय अंशीय निष्कासन की विधि से एक सजातीय श्रेणी के सब पदार्थो को दूसरी श्रेणी से तो पृथक् करने में सफल रहे, किन्तु एक ही सजातीय श्रेणी के विभिन्न पदार्थो को इस विधि से पृथक् करने में असफल हुए।

हाल में ही, हैमिल्टन एवं होल्मन (५६) ने कुछ स्टीरवायडो को स्वत. अकन[3] वाली विधि से पृथक् किया है, विशेष रूप से डिहाइड्रोआइसोऐन्ड्रोस्टीरोन, टेस्टो-स्टीनोर और प्रोजेस्टीरोन को। इसमें इन तीनो यौगिको का ०.५ प्रतिशत चोलस्टीरोल के एथेनाल में विलयन द्वारा एक मिश्रित अधिशोषक स्तम्भ (Darco G–60 charcoal एक भाग, और Hyflo Supercel दो-भाग) पर विस्थापन किया गया। बाद के अध्याय में द्रव विस्थापन स्तम्भों की क्रिया का वर्णन किया जायेगा।

1. Supercel 2. Trappe 3. Self-recording

गैसों और बाष्पों की अधिशोषण-क्रोमैटोग्राफ़ी

क्लेसन (५४) ने सक्रिय कार्बन को अधिशोषक की भाँति प्रयुक्त करके एक स्वत अकन वाली विस्थापन-विधि का वर्णन किया है। फ़िलिप्स (९) ने क्लेसन को विधियों से दुबारा प्रयोग किये; इन दोनो शोधकर्त्ताओ ने इन विधियों को बड़ा अच्छा पाया।

इनकी विधि द्रव–क्रोमैटोग्राफ़ी के समान है, यद्यपि द्रवो से अधिशोषण के साथ अपलटनीय[1] अधिशोषण होने की संभावना कम ही है। इसमें चयनशीलता[2] काफी अधिक है। क्लेसन का दावा है कि २,३-डाइमेथिल हेक्सेन और २,५-डाइमेथिल हेक्सेन; एव बेजीन और साइक्लोहेक्सेन यौगिको जैसे किन्ही भी युग्मो[3] को इस विधि से पृथक् किया जा सकता है। इसमें स्तम्भ वैसे ही होते है जैसे द्रव-क्रोमैटो-ग्राफी मे, किन्तु अधिशोषक का उतना बारीक होना जरूरी नही है। विलयन के वर्तनाक के स्थान पर, गैसो अथवा बाष्पों की उपस्थिति को तापीय चालकता से शेक्सपियर कैथेरोमीटर[4] की विधि की तरह जाना जाता है।

क्लेसन ने नाइट्रोजन धारा को एक विशेष रीति से बनाये स्टील के गैसमापी[5] से प्राप्त किया। इसमे भार इस प्रकार व्यवस्थित थे जिससे दाब का नियत्रण हो सके। फिलिप्स ने नाइट्रोजन गैस का एक सिलिडर लिया और इसमे प्रवाहमापी[6] को लगा दिया।

परख-मिश्रणों को क्लेसन ने एक विशेष नमूनेवाली नली[7] मे लिया, इसको ठोस कार्बन-डाइक्साइड से ठंडा किया जा सकता था। फिलिप्स ने इसको द्रव-वायु से ठडा किया। यत्र मे परख मिश्रणो को इस नली द्वारा डाला गया। विस्थापी पदार्थ के लिए दोनों शोध-कर्त्ताओ ने एथिल-एसीटेट का उपयोग किया। फिलिप्स ने ०° पर एथिल-ऐसीटेट के पात्र मे से नाइट्रोजन धारा को प्रवाहित करके उसे संतृप्त किया।

1. Irreversible
2. Selectivity
3. Pairs
4. Shakespear Katharometer
5. Gasometer
6. Flowmeter
7. Sampling tube

क्लेसन ने स्तम्भ के लिए ४० सेमी० लम्बी स्फटिक की नलियाँ लीं। इसके दोनों सिरो पर धातु की पत्तिया लगी थी; जल से इनको ठडा रखने के लिए भी साधन था। स्फटिक-नली को ग्लिसरीन-लिथार्ज की सीमेंट लगा कर धातु की पत्तियों से दबा दिया गया। चार प्रकार की नलियो का उपयोग किया गया और इनके छिद्रों का व्यास ०.५ से लेकर १.८ सेमी० तक था। फ़िलिप्स ने तीन शीशे की नलियों का उपयोग किया; ये १० सेमी० लबी थी और इनके छिद्र ०.२, ०.८ एव १.५ सेमी० के थे। दोनों शोधकर्त्ताओं ने नलियो को गरम किया—क्लेसन ने बिजली का तार लपेट कर और फिलिप्स ने नली के उपयुक्त विलायक के वाष्प मे रख कर।

अधिशोषकों के लिए क्लेसन ने दो प्रकार के सक्रिय कार्बन लिये—७० से ११० छिद्र प्रति वर्ग सेंमी० वाली, एवं ११०-१७० छिद्र प्रति वर्ग सेमी०वाली जाली से छने हुए। फिलिप्स ने ब्रिटिश-मानक-संस्था[1] के अनुसार ४० छिद्र वाली चलनी को लिया और इसको तार की उपयुक्त जाली से ठीक बना लिया। क्लेसन के एक प्रयोग मे ६ ग्राम कार्बन लिया गया और १.५ ग्राम एथिल ऐसीटेट का विस्थापन-प्रस्फुटक[2] की भाँति प्रयोग हुआ। स्तम्भ मे एक बार परख-द्रव के लगाये जाने की मात्रा उतनी ही रखी गयी जिससे स्तम्भ का थोडा ही भाग, जैसे एक चौथाई, सतृप्त हो सके। इस मात्रा के वास्तविक निर्धारण के लिए यह आवश्यक है कि प्रयोग मे पदार्थो के पृथक् होने की क्षमता को ध्यान में रखा जाये। तौले हुए पदार्थों की वास्तविक तौल और उनकी तराजू वाली तौल मे लगभग १ प्रतिशत का अतर होता है। फ़िलिप्स ने २ घन सेमी० काठकोयले (Sutcliff , Sprakman, No. 208C) पर ४० मिलीलीटर प्रति मिनट के हिसाब से बहते हुए एथिलीन, प्रोपेन, ब्युटेन आदि गैसो के अधिशोषण-मान दिये है। इन प्रयोगो मे क्लेसन की अपेक्षा कम पदार्थो का उपयोग किया गया था, किन्तु यथार्थता लगभग १ प्रतिशत ही थी।

ताप-चालकता की विधि मे धातु के टुकड़े मे रखे एक बेलनाकार सेल पर गरम प्लैटिनम का प्रतिरोधक तार[3] लपेट दिया जाता है। इससे ह्वीटस्टोन-ब्रिज

1. B.S.S. Sieve
2. Displacement developer
3. Resistance wire

परिपथ[1] की एक भुजा बन जाती है। ऐसी दो भुजाओं की आवश्यकता होती है एक परख-गैस के लिए और दूसरी मानक-गैस[2] के लिए। गैसों की तापीय चालकता में अतर होने से प्लैटिनम के तार के वैद्युत प्रतिरोध मे अंतर पड़ जाता है और इसको धारा-मापी[3] से मापा जा सकता है। उपयुक्त दोनो शोध-कर्त्ताओ ने इस विधि मे अपने इच्छानुसार परिवर्तन किये और स्वतः-अकन विधियो का प्रयोग किया। अधिक ज्ञान के लिए उनके मौलिक शोध-लेखो को पढना चाहिए।

प्रयोग द्वारा प्राप्त मानों का विश्लेषण इस प्रकार किया जाता है—परीक्षण-फलों के अनुसार ग्राफ में तापीय चालकता के सामने स्तम्भ पर चलायी गयी गैस के आयतन के मानो के बिन्दु रखे जाते है (देखिए चित्र १४)। एक पदार्थ की
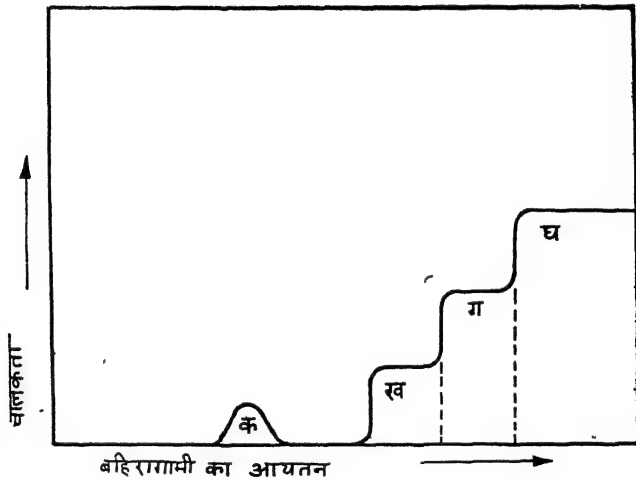
चित्र १४—विस्थापन प्रस्फुटन में चार विलयशीलों का पृथक् होना

तापीय चालकता उसके सांद्रण से समानुपाती होती है, यद्यपि इन दोनों का अनुपात विभिन्न पदार्थों के लिए पृथक्-पृथक् होता है। यदि यह अनुपात ज्ञात है, तो एक

1. Circiut 2. Reference gas 3. Galvanometer

"सीढी"[1] की ऊँचाई से सबधित सांद्रण को ज्ञात किया जा सकता है। और यदि उसको सीढी की लबाई से गुणा किया जाये तो एक अवयव की मात्रा को ज्ञात किया जा सकता है। चित्र १४ मे यही परिस्थिति दिखायी गयी है—मिश्रण के तीन अवयव हैं—क, ख और ग। इन तीनो को विस्थापन-प्रस्फुटक घ से पृथक् किया गया है।

यदि अधिशोषण—समाताप-वक्र[2] ज्ञात है तो प्रत्येक पदार्थ के साद्रण को एक अन्य विधि से सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है, क्योकि उनका निर्धारण विस्थापी[3] पदार्थ के साद्रण से होता है। विस्थापन प्रक्रिया के आरभ मे मिश्रण स्तम्भ के थोड़े-से भाग पर रहता है और उसका वितरण अग्रभागीय विश्लेषण के अनुसार होता है। पदार्थो की मिश्रित पट्टी बहते हुए प्रस्फुटक के साथ नीचे खिसक आती है और वह तब तक टूटती रहती है जब तक कि मिश्रण के अवयव पृथक् न हो जाये। अधिक मजबूती से अधिशोषित होने वाला पदार्थ कम अधिशोषित होने वाले पदार्थ को हटाता रहता है। इस प्रकार, जब मिश्रण एक स्तम्भ पर चल चुकता है तो उसके पदार्थो का वितरण एक स्थिर रूप धारण कर लेता है, इसमे प्रत्येक पट्टी की ऊंचान और लंबाई स्थिर होती है।

इन परिस्थितियों में आयतन (आ) प्रस्फुटक के चलाने से गति (ग) होती है और यह स्तम्भ की उस लबाई पर निर्भर होती है जिसमें एक ग्राम अधिशोषक रहता है। मान लीजिए कि स्तम्भ की लंबाई (ल) पर(ख) की कुछ मात्रा लगी है और उसके स्थान पर (ग) लग जाता है। यदि ये दोनों मात्राएं $ग_{ख}$ और $ग_{ग}$ हैं और उनके सांद्रण $सां_{ख}$ और $सां_{ग}$ हैं, तो स्पष्ट रूप से—

$$ग_{ख} / आ = सां_{ख}, \quad और \quad ग_{ग} / आ = सा_{ग};$$

$$फलतः, \quad ग_{ख} / सां_{ख} = ग_{ग} / सा_{ग} = आ$$

चित्र १४ में दिखाये पदार्थो के क्रोमेटोग्राम के समताप-वक्र चित्र १५ में दिखाये गये हैं। अभी जो सरल सबंध स्थापित किया गया है, अर्थात् $^{ग}ग$, यह सीधी रेखा से व्यक्त हो रहा है, क्योंकि $^{ग}ग$ नियतांक है। यह सीधी रेखा आरम्भ बिन्दु

1. "Step" 2. Adsorption isotherms 3. Displacing

से भी निकलती है और (घ) के समताप-वक्र को भी उस स्थान पर काटती है जिससे उपयुक्त साद्रण का पता चलता है। यदि (क), (ख) और (ग) के भी
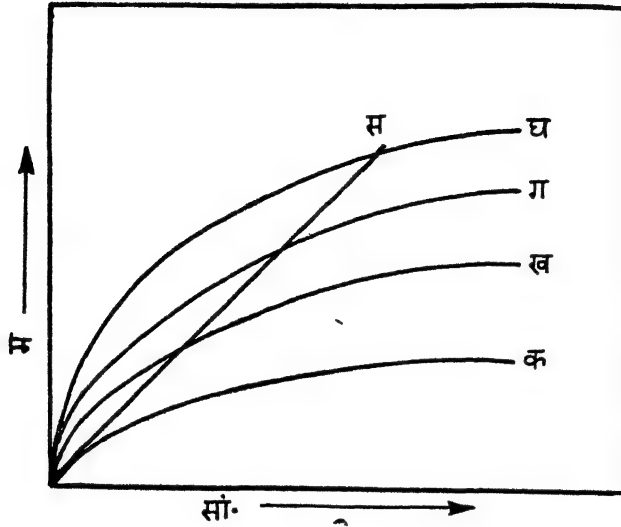
चित्र १५—स्तम्भ-अधिशोषक पर चित्र १४ के अनुसार विलयशीलों के अवशोषण समताप-वक्र

समतापवक्र ज्ञात है तो यह सीधी रेखा वक्रों को उस स्थान पर काटेगी जिससे उनके साद्रणों को ज्ञात किया जा सके। ये वे साद्रण है जो स्तम्भ पर विस्थापित हुए थे। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि सीधी रेखा (क) के समताप-वक्र को नही काटती, वह उसके आरंभ बिदु से अवश्य मिलती है। इससे स्पष्ट है कि क "निष्कासित"[1] होता है और इसीलिए चित्र १४ में उसका विशेष वक्र (चोटी की भाँति) दिखाई पड़ता है। इस चित्रमय विधि का विकास टिजेलियस ने किया।

1. Eluted

अध्याय ५

स्तम्भ-क्रोमैटोग्राफ़ी-विभाजन

इस अध्याय मे जिन विधियो का वर्णन किया गया है, उनकी विशेषता यह है कि उनमें दो विलायको का प्रयोग होता है और ये मिश्र्य नही होते अथवा अशतः मिश्र्य होते है। इस अध्याय मे मार्टिन एव सिन्ज (४) के मौलिक शोध-निबध का वर्णन किया गया है और इन वैज्ञानिको के मस्तिष्क मे यह अंतर स्पष्ट था। आप लोगों ने यह भी कहा है कि—"गतिशील फेज़ द्रव न होकर वाष्प भी हो सकती है।" इस सिद्धांत के आधार पर गैस और द्रव के बीच मे विभाजन का उपयोग करके एक नवीन विधि ज्ञात की गयी है और इसका वर्णन इसी अध्याय मे बाद मे किया जायगा।

विभाजन-स्तम्भो पर प्रक्रिया सदैव निष्कासन-विधि से की जाती है। लेवी (५७) ने विस्थापन-विधि का उपयोग करके थोड़े-से प्रयोग किये, पर आपने प्रायोगिक विधि का विस्तार पूर्वक वर्णन नही किया।

क्रेग की "प्रवाह-विरोधी" वितरण[1] विधि का भी जिक्र किया गया है; वस्तुतः इसे क्रोमैटोग्राफी के अध्याय मे नही रखना चाहिए।

विभाजन-स्तम्भो और अन्य स्तम्भो पर कार्य करने की विधि मे काफी अंतर नही है। फलतः, इस अध्याय में विभाजन-क्रोमैटोग्राफी के उपयोगो का वर्णन किया जायेगा। आवश्यकतानुसार कुछ स्थलो पर व्यावहारिक रूप से उपयोगी तथ्यो पर भी प्रकाश डाला जायेगा।

मार्टिन एवं सिन्ज के मौलिक प्रयोग

जिन दो विलायकों का मार्टिन एव सिन्ज ने उपयोग किया, वे थे—नार्मल

1. Counter-current distribution

ब्यूटेनाल और क्लोरोफार्म। इनके साथ सिलिका-श्लिषि का स्तम्भ में उपयोग किया गया। स्तम्भ धारक ३० सेमी० लबी नली थी और इसका व्यास १ सेमी० था। इस नली के निचले सिरे पर छिद्रयुक्त चाँदी की प्लेट थी और इस पर छनने कागज की दो सतहे लगा दी गयी। शुष्क सिलिका-श्लिषि को जल मे मेथिल आरेज के सतृप्त विलयन (विलयनश्लिषि—भार के अनुसार ७।१०) से मिला लिया गया। इसके फलस्वरूप हलके गुलाबी रग का एक चूर्ण बन गया जो मिलाने वाले पात्र मे चिपक ही नही पाता था। इस चूर्ण की उतनी मात्रा को लिया गया जिसमें ५ ग्राम सिलिका थी, इसका ३५ मिलीमीटर क्लोरोफार्म मे घोला गया। क्लोरोफ़ार्म को पहले ही जल से, जिसमें १ प्रतिशत (आयतन-अनुसार) नार्मल ब्यूटेनाल था, सतृप्त कर लिया गया था। ऐसा करने से गुलाबी चूर्ण का रग पीला हो गया।

इस आलम्बन[1] को स्तम्भ-धारक में डाला गया। स्तम्भ के निचले भाग से क्लोरोफार्म की आवश्यकता से अधिक मात्रा निकल गयी और श्लिषि धीरे-धीरे जमती गयी। जब यह श्लिषि अपनी साधारण उँचान तक आ गयी तो उसका ऊपरी भाग शुष्क मालूम पडता था। यदि स्तम्भ के ऊपरी भाग को क्लोरोफ़ार्म से सदैव गीला रखा जाये, तो वह वैसे का वैसा ही बना रहता था। ऐसा करने से स्तम्भ की केशनलियों में क्लोरोफार्म भरा रहता था और उनमे हवा अदर नही पहुँच पाती थी। जब स्तम्भ में दुबारा क्लोरोफार्म डाला गया तो श्लिषि ऊपर नही उठी, यद्यपि वह क्लोरोफ़ार्म से हलकी होती है।

पृष्ठ ५७ पर बतायी विधि से विश्लेषण किये जाने वाले पदार्थो को लगाया गया। विलायक के रूप मे नार्मल ब्यूटेनाल और क्लोरोफ़ार्म का उपयोग किया गया। और अधिक विलायक डालने पर कोमैटोग्राम का प्रस्फुटन होने लगा। पीले स्तम्भ पर गुलाबी पट्टी धीरे-धीरे नीचे खिसकने लगी और अपने अवयवो[2] में पृथक् हो गयी। अधिक विलायक का उपयोग करके इन पृथक् पट्टियों को स्तम्भ में से निकलते द्रव के रूप में एकत्र किया जा सकता है। विलायक मिश्रण की थोड़ी-सी भी अशुद्धियो से पट्टियों के नीचे खिसकने की गति बदल जाती है। शुद्ध क्लोरोफ़ार्म से गति बहुत धीमी थी। बी० पी० क्लोरोफ़ार्म द्वारा (जिसमें

1. Suspension   2. Constituents

१ प्रतिशत एथेनाल था) मिश्रण के अवयवों को अच्छी तरह से प्राप्त किया जा सका, पर सबसे अच्छा पृथक्करण तब हुआ जब क्लोरोफार्म में आधा प्रतिशत नार्मल ब्यूटेनाल था।

मार्टिन एवं सिन्ज ने अपने प्रयोगो द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि ऐसीटिल-युक्त अमीनो-अम्लो में से प्रत्येक को इस विधि द्वारा स्तम्भ मे से भली-भॉति प्राप्त किया जा सकता है। उन्होने ऐसीटिल-युक्त अमीनो-अम्लो के मिश्रण को पृथक् करने का प्रयास किया। पट्टियो के अनुसार निष्कासित के अश पृथक् कर लिये गये और निर्वात मे रख कर उनको सुखा लिया गया। अवशिष्ट पदार्थ को थोडे जल में घोल लिया गया और ०.०१ नार्मल बेरियम हाइड्राक्साइड से उसका अनुमापन किया गया; इसमे फीनोल्फथैलीन का सूचक (इडिकेटर) की भॉति उपयोग हुआ। इन विधियों से फ़िनाइल ऐलानीन, नारल्युसीन, आइसोल्युसीन, ल्युसीन, प्रोलीन और वैलीन के ऐसीटिल व्युत्पन्नो[1] का पृथक्करण किया गया। ऐलानीन, ग्लाइसीन आदि के व्युत्पन्न स्तम्भ के सबसे ऊपरी भाग में रहे। इन पदार्थो की केवल कुछ मिलीग्राम मात्रा ही ली गयी थी।

सिलिका-श्लिषि की तैयारी

मार्टिन एवं सिन्ज ने "शुष्क अवक्षेपित"[2] बी० डी० एच० सिलिका-श्लिषि का उपयोग किया। इसको साद्रित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मे बार-बार उबाला गया जिससे लौह आदि अशुद्धियां निकल जाये। तत्पश्चात्, श्लिषि को आसुत जल और ९७ प्रतिशत एथेनाल से धोया गया। इसको ११०° पर सुखाकर रख लिया गया। बाद में इसी विधि से श्लिषि तैयार करने पर उतनी अच्छी श्लिषि नही बनी जैसी पहले बनी थी। अतः इस विधि मे थोडा परिवर्तन किया गया। बाज़ार में मिलने वाले औद्योगिक वाटर-ग्लास (१४०° Tw., Jos. Crosfield Ltd., Warrington) को उसके दुगुने आयतन के जल और १० नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में खूब चलाया गया। मेथिल आरेंज को बाहरी सूचक के रूप में डाल दिया गया था। आवश्यकता प्रतीत होने पर कुछ घंटो के बाद और अधिक अम्ल डाला गया। तत्पश्चात् इसको बुख्नेर छनने पर छान लिया

1. Derivatives 2. "Pure precipitated"

गया और उसे तब तक धोया गया जब तक सूचक उसमें से निकल नही गया। तब श्लिषि को एक या दो दिन तक रखा रहने दिया गया; तत्पश्चात्, उसको पुनः धोया गया और ११०° पर उसे सुखा लिया गया।

जैसा बाद मे ज्ञात होगा, इस प्रकार से बनी सिलिका-श्लिषि से भी काफ़ी कठिनाई प्रतीत हुई। अतः, इसके स्थान पर जलज उद्भिज्जयुक्त मिट्टी[1] का उपयोग किया जाने लगा है।

विभाजन क्रोमैटोग्राम का सिद्धान्त

मार्टिन एवं सिन्ज ने विभाजन क्रोमैटोग्राम का जो सिद्धांत प्रतिपादित किया, वह एक ऐसे नमूने पर आधारित था जिसका चित्र १ एवं २ (देखिए, अध्याय १) मे दियासलाई के समान पात्रो की ढेरी के रूप मे वर्णन किया गया है। आपने ही "सैद्धान्तिक प्लेट"[2] के विचार को जन्म दिया। एक सैद्धान्तिक प्लेट के तुल्य ऊँचाई (स० प० त० ऊं०) की परिभाषा यह दी गयी—यह वह ऊँचाई है जिसमें से निकलने वाला विलयन अगतिशील फेज मे विलयशील के औसत सांद्रण से सतह भर तक सतुलन में रहता है। यह मान लिया गया कि एक प्लेट से दूसरी प्लेट में विसार[3] गौण रहता है, और दो फेजो के बीच में किसी विलयशील का वितरण अनुपात, साद्रण तथा दूसरे विलयशीलों की उपस्थिति से प्रभावित नही होता।

उन्होने जो समीकरण बनाया, वह इस प्रकार है—

$$क = १/\sqrt{२ \pi र}\ (आ/र\ व)^{र} \times प्रा \left(र - \frac{आ}{व}\right)$$

जहाँ क = विलयशील की मात्रा;

र = प्लेट का क्रमिक नंबर;

आ = क्रोमैटोग्राम के प्रस्फुटन मे उपयुक्त विलायक का आयतन; और

$$व = ऊँ. (क्ष_{ग} + a\ क्ष_{अ}),$$

जिसमें ऊँ = स० प० त० ऊँ,

$क्ष_{ग}$ = गति शील फ़ेज का गोल-काटीय[4] क्षेत्रफल,

1. Diatomaceous earth
2. "Theoretical plate"
3. Diffusion
4. Cross-sectional

α (अ¯फा) = विभाजन-गुणक, अर्थात् $\dfrac{\text{अगतिशील फ़ेज मे सांद्रण}}{\text{गतिशील फेज में सांद्रण}}$, और

$क्ष_{अ}$ = अगतिशील फ़ेज का गोल—काटीय क्षेत्रफल।

उपर्युक्त समीकरण और तर्क से यह सिद्ध किया जा सकता है कि—

$$\alpha = क्ष/_{प}\ क्ष_{अ} - क्ष_{ग}/क्ष_{अ},$$

जिसमें, क्ष = नली का गोल-काटीय क्षेत्रफल, और

$$प = \frac{\text{पट्टी की गति}}{\text{स्तम्भ के ऊपर की नली मे विलायक की सतह की गति।}}$$

मार्टिन एव सिन्जने ऐसीटिल प्रोलीन और ऐसीटिल फ़िनाइल ऐलानीन से प्रयोग किये। आपने यह मालूम किया कि α के ज्ञात मान और स्तम्भ मे पट्टी की गति से गणित α के मानों में काफी समानता थी। आपने यह भी ज्ञात किया कि साद्रण बढने पर विभाजन-गुणक कम होता जाता है। स्तम्भो के पृथक् करने की क्षमता की तुलना करने में स० प० त० ऊँ० के विचार से काफ़ी सहायता मिलती है। इन वैज्ञानिको का अनुमान था कि उनके प्रयोगो मे स० प० त० ऊँ० का वास्तविक मान लगभग ०.००२ सें मी० था।

प्रायोगिक और सैद्धातिक मानो मे तुलना दो और बातों पर निर्भर है—सिलिका-श्लिषि में अधिशोषण के गुण नही होने चाहिए, और उस के विभिन्न नमूनों में पृथक् करने की क्षमता भी एक प्रकार की ही होनी चाहिए। यह भी दिखाया जा सकता है कि साद्रण के अनुसार विभाजन-गुणक के बदलने के कारण इन प्रयोगो को दुबारा करने पर वैसे ही फल नही मिलते।

सिलिका-श्लिषि को तैयार करने मे कठिनाई

गार्डन, मार्टिन एव सिन्ज (५८) ने अपने द्वारा बनायी सिलिका-श्लिषि का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। पृ० ८० पर बतायी विधि से सिलिका-श्लिषि को बनाना आरंभ किया जाता है। पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को धार बाँध कर छोड़ा जाता है और दोनो पदार्थो को खूब जोर से चलाया जाता है। धार तभी रोकी जाती है, जब पदार्थो को चलाया जा रहा हो। पहले, विलयन मे परिवर्तन

धीरे-धीरे होता है; बाद में मोटी रबड़ी[1] जैसी बन जाती है और मिश्रण को ज़ोर से चलाने के कारण बहुत छोटे ढेलो के अलावा बाकी सब टूट जाते है। जब मिश्रण थाइमोल ब्लू[2] से स्थायी रूप से अम्लीय होने का चिह्न देता है, तो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का छोडना बंद कर दिया जाता है। इस मिश्रण को तीन घटे तक रखने के बाद बुख्नेर छनने पर छान लिया जाता है। तब उसे आसुत जल (प्रति २५० ग्राम शुष्क श्लिषि के लिए २ लिटर) से धोया जाता है। पर इस बातकी सावधानी रखी जाती है कि अवक्षेप चिटख न जाये। अब श्लिषि का ०.२ नार्मल हाइ-ड्रोक्लोरिक अम्ल में आलम्बन किया जाता है और उसे साधारण ताप पर दो दिन तक रखा रहने दिया जाता है। उसे फिर छान कर पहले की भाँति धोया जाता है। यह प्रक्रिया तब तक की जाती है जब तक छन कर टपकने वाले द्रव में मेथिल आरेंज आता रहता है। तत्पश्चात् उसे ११०^{c} तक गरम वायु-ऊष्मक में सुखा लिया जाता है।

इन वैज्ञानिकों ने यह ज्ञात किया कि इस प्रकार से श्लिषि बनाने पर भी उसमें से मेथिल आरेज फूट पड़ता है। इसके स्थान पर उन्होने ०.०५ प्रतिशत जलीय पेलारगोनीन क्लोराइड (चटकीले लाल रंग के डहलिया की पंखुड़ियो से बनाया गया (Coltness Gem", cf Willstatter and Mallison) का उपयोग किया और उसे अधिक अच्छा पाया। लिडेल एवं राइडन (५९) ने भी इस काम के लिए एक सूचक बताया है:—३ : ६ डाइसलफ़ो-α-नेफथलीन-ऐज़ो-नार्मल फिनाइल-α-नेफ़थल अमीन ("$R\text{-}NH_4$")

आइशरउड (६०) ने फलों के कार्बनिक अम्लों से कार्य करके ज्ञात किया कि आक्सैलिक अम्ल को उपर्युक्त विधि से बनायी श्लिषि मे से अलग करना कठिन था। अतः आपने उपर्युक्त विधि मे इस प्रकार परिवर्तन किया—

(क) दस नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से अवक्षेपण करते समय, अम्ल की काफी अधिक मात्रा डाल दी गयी जिससे श्लिषि में एल्युमिनियम (Al^{+++}) और लौह (Fe^{+++}) की मात्रा क्रमशः ०.००४ एवं ०.००२ से अधिक न हो। इस प्रकार इनको लगभग निकाल दिया गया।

1. Porridge 2. Thymol Blue

(ख) श्लिषि को दो सप्ताह तक सूखने दिया गया। ऐसा करने से श्लिषि के अधिशोषक गुण-धर्म विशेष रूप से विकसित हो जाते है।

(ग) इतने दिनों रखने के बाद श्लिषि को दस नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में दुबारा आलम्बित किया गया और उसे रात भर तक रखा रहने दिया गया। तत्पश्चात्, उसे छानकर ५ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से फिर धोया गया; इसके बाद, आसुत जल से और पुनः परिशुद्ध[1] ऐलकोहल से, जिसमें एक प्रतिशत दस नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल मिला हुआ था। सबसे बाद मे उसे ईथर से धोया गया।

ट्रिस्ट्रम (६१) ने प्रोटीन के ऐसीटो एव अमीनो-अम्लो से कार्य करते समय बताया कि सिलिका-श्लिषि को ठीक से तैयार करना सबसे बड़ी समस्या है। आइशरउड की भाँति आपने श्लिषि को दो सप्ताह तक यो ही रखने की विधि को ठीक पाया। पर सिलिकेट मे आपने निम्न ताप (८°) पर अम्ल डालना ठीक समझा। ऐसा करने से उसके कण महीन हो जाते है। आपने यह भी ज्ञात किया कि इस विधि से तैयार की गयी श्लिषि द्वारा ऐसीटो एवं अमीनो-अम्लों को निकालने में, और आइशरउड की विधि से बनी श्लिषि में से निकलने मे जो अंतर था वह श्लिषि के जलीय मार्ग पर निर्भर था। साधारण रूप से ९५ प्रतिशत तक पदार्थों की प्राप्ति होती थी; इसमें केवल एक अपवाद था ऐसीटो-मेथायोनीन का। पता नही क्यों, यह बहुत ही कम मात्रा में निकल पाता था।

सहायक द्रव्य रूप में जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी

यह स्पष्ट है कि सिलिका-श्लिषि आदर्श सहायक-द्रव्य नही है। पिछले कुछ वर्षों में जलज उद्भिज्ज युक्त मिट्टी का उपयोग किया गया है और इससे अधिक अच्छे फल प्राप्त हुए है। उदाहरणतया, मार्टिन (६२) ने कीसेलग्हुर[2] का उपयोग किया। आपने स्तम्भ को भरने की भी एक विशेष विधि बतायी, क्योकि जल में इसको जला कर स्तम्भ-धारक मे डालने से यह ठीक प्रकार नही बैठ पाती। इसके लिए एक सरल यंत्र का उपयोग किया गया। एक डिस्क मे लगभग एक-एक मिली-मीटर के छेद किये गये और उसके बीच के भाग को एक लबे तार से जोड़ दिया गया। तार स्तम्भ से काफ़ी अधिक लबा था। डिस्क का व्यास स्तम्भ के अद-

1. Absolute 2. Kieselguhr

रूनी व्यास से कुछ कम होता है। कीसेलग्हुर को द्रव में घेप[1] कर स्तम्भ-धारक मे डालते है और उपर्युक्त यत्र को चलाकर कीमेलग्हुर को केवल एक स्थान पर नही जमने देते। जब इस यत्र को धीरे से नीचे की ओर ढकेला जाता है तो नीचे वाला कीसेलग्हुर धीरे से दब जाता है। अतः स्तम्भ भरने मे, पहले आलम्बित पदार्थ को सजातीय कर लेते है और उसके बाद उसे धीरे से दबा देते है। अतः स्तम्भ के ठीक से भरने की विधि यह है—

पहले आलम्बन को सजातीय करते है, बाद मे जमे पदार्थ को दबाते है। फिर इन दोनो प्रक्रियाओ को इसी क्रम में बार-बार किया जाता है। आवश्यकता से अधिक द्रव को या तो पिपेट से निकाल लिया जाता है या उसे नीचे बहने दिया जाता है। द्रव मे आलम्बित पदार्थ को स्तम्भ मे धीरे-धीरे डाला जाता है। ऐसा तब तक किया जाता है जब तक कि स्तम्भ भर न जाये। इसी विधि से "सीलाइट"[2] अथवा "सुपरसेल"[3] को भी भरा जा सकता है।

विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी के उपयोग

जैसे ही यह नवीन विधि निकाली गयी वैसे ही इसके कई महत्त्वपूर्ण उपयोग ज्ञात हुए। अब इनका यहाँ वर्णन किया जायेगा।

प्रोटीन के अमीनो-अंत-समूहों का निर्धारण (सैन्गर)

प्रोटीन और पेप्टाइड में स्वतन्त्र अमीनो-समूहों को ज्ञात करने की विधि (६३) मे गार्डन, मार्टिन एव सिन्ज द्वारा मौलिक रूप से तैयार की गयी सिलिका-श्लिषि का प्रयोग किया गया। प्रोटीन पर पहले २:४ डाइनाइट्रोफ़्लोरो बेंजीन की प्रतिक्रिया की जाती है। तत्पश्चात् प्रोटीन के जल-विश्लेषण से उसके अवयव अमीनो-अम्ल अथवा सरल पेप्टाइड प्राप्त किये जाते है। प्रतिस्थापित अमीनो-अम्ल पर अधिकतर जल-विश्लेषण की प्रतिक्रिया नही होती; अतः इन अम्लों को इन्ही परिस्थितियो में ज्ञात कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उतने ही समय तक जल-विश्लेषण होने दिया जाता है। अब समस्या यह होती है कि डाइनाइट्रोफ़िनाइल (डा० ना० फि०) अमीनो-अम्लो को किस प्रकार पृथक्

1. By making slurry   2. Celite   3. Supercel

किया जाये। सैन्गर ने अधिशोषण क्रोमैटोग्राफी द्वारा ऐसा करने का प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नही मिली। डा० ना० फि० अमीनो-अम्ल मैग्नीशियम आक्साइड और एल्यूमिना पर विच्छेदित हो जाते है। विभाजन-क्रोमैटोग्राफी की विधि अधिक सफल रही और लगभग सभी डा० ना० फ़ि० अमीनो-अम्लों को उपयुक्त विलायकों के चयन से पृथक् कर लिया गया।

अभी हाल में ही पेरोन (६४) ने सिलिका-श्लिषि के स्थान पर सबसे मोटे प्रकार के "सीलाइट ५४५" (Johns—Manville Co., Ltd., Artillery House, Artillery Row, London) का उपयोग किया है। पेरोन ने भी छिद्रयुक्त डिस्क वाले यंत्र का स्तम्भ भरने में उपयोग किया। आप ने काँच की सीधी लंबी नली का स्तम्भ-धारक की भाँति उपयोग किया। उसके निचले भाग को कार्क से बंद कर दिया गया और सीलाइट को कार्क के ऊपर भरा गया। जब स्तम्भ भर गया तो कार्क को निकाल लिया गया। यदि स्तम्भ को मज़बूती से भरा जाये तो उसके नीचे अन्य वैज्ञानिको द्वारा उपयुक्त छिद्रमय सहायक डिस्क लगाने की आवश्यकता नही पड़ती। पेरोन ने केवल दो विलायको का उपयोग किया—ईथर और क्लोरोफ़ार्म। किन्तु इनके साथ सीलाइट में निम्नलिखित PH वाले तीन प्रतिरोधों में से किसी एक का उपयोग किया गया—४.०, ६.५ अथवा ७.०। आपके २०×३ सेंमी० वाले बड़े स्तम्भ में लगभग ६० ग्राम सीलाइट लगती है और इससे लगभग ३५० मिलीग्राम डा० न० फि० प्रोटीन के जल-विश्लेषित पदार्थो को पृथक् किया जा सकता है।

दोनों वैज्ञानिकों ने "सा" मानों की सारणी दी है। पार्ट्रिज एवं स्वेन (६) ने कुछ डा० ना० फि० अमीनो-अम्लों के पलटे हुए फ़ेज[1] के विभाजन-क्रोमैटोग्राम दिये हैं। इसमें व्यापारिक क्लोरीनयुक्त रबर "ऐलोप्रीन" (I C I Ltd, अति उच्च श्यानता वाले ग्रेड E) का सहायक पदार्थ के रूप में उपयोग किया गया। नार्मल-ब्युटेनाल को स्थिर फ़ेज़ में रखा गया और जलीय प्रतिरोध-विलयनों को गतिशील फेज मे। क्लोरीन-युक्त रबर को इस प्रकार तैयार किया गया—उसे नार्मल ब्युटेनाल (४ मिलीलीटर प्रति १० ग्राम क्लोरीनयुक्त रबर) के पहले से ही नार्मल ब्युटेनाल से सतृप्त, ०.२ मोलर साइट्रेट—प्रतिरोध के आलम्बन

1 Reversed

से हिलाया गया। इससे जो घेप[1] बना, उसे स्तम्भ मे साधारण विधि से भरा गया। स्तम्भ-धारक के नीचे थोडा हलका दाब रखने से पदार्थ आसानी से बैठ जाता है। लाइसीन, ऐस्परागीन, सीरीन, ऐस्पार्टिक अम्ल, ऐलानीन, प्रोलीन, वैलीन एवं ल्युसीन के डा० ना० फि० व्युत्पन्नो की प्राप्ति लगभग परिमाणात्मक रूप से होती है। टायरोसीन, फिनाइल–ऐलानीन और ग्लाइसीन के डा० ना० फि० व्युत्पन्नो की प्राप्ति इतनी अच्छी नही होती।

अमीनो-अम्लो के डा० ना० फि० व्युत्पन्नो के काग़ज-क्रोमेटोग्राम पर सा अ मान भी ज्ञात है (देखिए, पठनीय सामग्री-उल्लेख ६५, ६६, ६७)।

मेथिलयुक्त शर्कराओं का पृथक्करण (बेल)

इस विधि (६८) मे भी गार्डन, मार्टिन एवं सिन्ज की भाँति तैयार की गयी सिलिका का उपयोग होता है, पर उसमें सूचक का प्रयोग नही किया जाता। स्तम्भ तैयार करने के लिए, सिलिका-श्लिषि का थोड़ा भाग धूम-कक्ष[2] मे खरल में पीस लिया जाता है। तत्पश्चात् भार के अनुसार उसमे आधा जल मिलाया जाता है। और उसे फिर पीसा जाता है। अब नम सिलिका का क्लोरोफार्म के साथ घेप बनाया जाता है और उसे साधारण प्रकार के स्तम्भ-धारक मे उँडेला जाता है। जो द्रव ऊपर निथर आता है, उसे बहने दिया जाता है। स्तम्भ की लगभग दुगुनी ऊँचाई तक आ जानेवाले क्लोरोफ़ार्म को फिर बहने दिया जाता है जिससे चिकनाई पूर्णतया निकल जाये। अब प्रयोग के लिए स्तम्भ तैयार है।

बेल ने ऐसे तीन स्तम्भ तैयार किये—प्रत्येक स्तम्भ एक सें०मी० व्यास का था और उसमें २ ५ ग्राम सिलिका थी। तत्पश्चात् २:३:६ ट्राइमेथिल ग्लूकोज और २.३.४:६ टेट्रामेथिल ग्लूकोज के (१ मिलीग्राम प्रति मिलीलीटर क्लोरोफ़ार्म मे) विलयनों के एक-एक मिलीलीटर को प्रत्येक स्तम्भ में लगाया गया। तत्पश्चात् एक स्तम्भ मे भरकर आनेवाले क्लोरोफार्म को प्रत्येक स्तम्भ मे बहने दिया गया। अब एक स्तम्भ तैयार है। दूसरे स्तम्भ में एक स्तम्भ मे आनेवाले क्लोरोफार्म की चौगुनी मात्रा को बहने दिया गया। तीसरे स्तम्भ को औधा कर धर दिया गया। पहले दो स्तम्भो को बाहर निकाल लिया गया और उन्हे ११०°

1. Slurry गारा   2. Fume cupboard

पर सुखाकर ठंडा होने के लिए रख दिया गया। तत्पश्चात् सारे स्तम्भ मे २ प्रतिशत ऐलकोहलीय→नैफथाल की बूँदे रखी गयी; इसी प्रकार साद्र सल्फ्यूरिक अम्ल की सारे स्तम्भ में बूँदे रखी गयीं। मॉलिश-परख[1] के अनुसार जहाँ पर भी शर्करा होती है, वहाँ गहरा बैंजनी रंग आ जाता है। दोनो स्तम्भों के ऊपर एक बड़ी स्पष्ट पट्टी (ट्राइ) मिलती है। पहले स्तम्भ मे नीचे की ओर एक दूसरी पट्टी (टेट्रा) की मिलती है, पर यह कुछ फैली हुई होती है। यदि सिलिका-श्लिषि का नमूना अच्छा है तो दूसरे स्तम्भ मे केवल ट्राइ की पट्टी होनी चाहिए, क्योकि टेट्रा-पट्टी को बाहर निष्कासित हो जाना चाहिए। यदि दूसरे स्तम्भ में टेट्रा की पट्टी दिखाई देती है, तो तीसरे स्तम्भ में, एक स्तम्भ मे आनेवाले क्लोरोफ़ार्म की आठ गुनी मात्रा को बहने दिया जाता है। ऐसा करने पर भी यदि उसमें टेट्रा की पट्टी दिखाई देती है तो सिलिका के नमूने को बेकार करार कर दिया जाता है।

ट्राइमेथिल शर्करा से टेट्रामेथिल शर्करा की ५०-२०० मिलीग्राम को परिमाणात्मक रूप से पृथक् किया जा सकता है, यदि मिश्रण मे उनका आणविक अनुपात १-२०० हो। इस विधि से डाइमेथिलशर्करा को भी पृथक् किया जा सकता है। बेल ने कुछ आवश्यक सावधानियों का वर्णन किया है जिससे चिकनाई अथवा कार्बनिक मैल, जैसे ऐसीटोन के संघनन-द्रव्य,[2] स्तम्भ में प्रवेश नही कर पाते। विलायकों का आसवन ऐसे उपकरण में किया जाता है जिसमे सब शीशा ही हो और क्लोरोफ़ार्म को जल से भली भाँति धोया जाता है।

पौधों से कार्बनिक अम्लों का पृथक्करण

आइशरउड (६०) ने ज्ञात किया कि जब पौधों से कार्बनिक अम्लो को पृथक् करना हो, तो सिलिका-श्लिषि को बनाने की विधि में थोडा अंतर करना पड़ता है। यदि इस काम के लिए साधारण रूप से बनी श्लिषि का उपयोग किया जाय तो कार्बनिक अम्लों के आयनो के कारण पट्टियाँ बहुत चौड़ी बनती है, क्योकि बढती हुई तनुता के साथ विभाजन-गुणक भी काफ़ी तेज़ी से बढ़ता है; सिलिका-श्लिषि के साथ मे सूचक भी जल्दी ही निकल जाता है। इन कारणो से आइशरउड ने

1. Molish-test 2. Condensation products

अपनी सिलिका-श्लिषि में ०.५ नार्मल सल्फ़्यूरिक अम्ल को मिला लिया और स्तम्भ के बहिरागामी[1] में सूचक की पतली धारा को छोड़ा। अतः पट्टियों के बनने के आरभ और अंत को बहिरागामी में रंग-परिवर्तन से ज्ञात किया गया। नार्मल ब्युटेनाल और क्लोरोफ़ार्म के मिश्रण का गतिशील फ़ेज़ की भाँति उपयोग किया गया। मौलिक शोध-निबंध में अम्लों—ऐसीटिक, फ्युमारिक, ग्लूटारिक, फ़ार्मिक, सक्सीनिक, ट्रान्सऐकोनीटिक, मैलोनिक, अक्सैलिक, ट्राइकार्बालिक, ग्लाइकालिक, मैलिक, साइट्रिक एवं टार्टारिक—के परीक्षण फलो का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ वाष्पशील है और आइशरउड ने उनके निःसारण[2] की ऐसी विधि का विकास किया है जिससे उनका पृथक्करण साधारण ताप पर ही हो जाता है। विस्तृत वर्णन के लिए उनका मौलिक शोध-निबंध देखिए।

बुलेन, वार्नर एवं बुरेल (६९) ने आइशरउड की विधियों में थोड़ा परिवर्धन किया है। इसमे नार्मल प्रोपेनाल के क्लोरोफार्म मे अनुपात को विलायक में थोड़ा-थोड़ा बढाया गया है। डोनल्डसन, टुलेन एवं मार्शल (७०) ने इन दोनो के अनुपात में बराबर परिवर्तन के लिए एक पात्र (क) लिया; इसमें ५० प्रतिशत नार्मल- ब्युटेनाल-क्लोरोफ़ार्म को रखा, यह पात्र दूसरे पात्र (ख) से मिला हुआ था और इसमे शुद्ध क्लोरोफार्म भरा था। पात्र (ख) मे मिश्रण होता है और जो विलायक पात्र (ख) में से निकलता है उसे स्तम्भ के ऊपर डाला जाता है।

आल्म, विलियम्स एवं टिज़ेलियस (११२) ने निष्कासक के अनुपात में इस बराबर परिवर्तन को "प्रवणता-निष्कासन"[3] की सज्ञा दी है और इसका पूरा विवरण दिया है।

माटगोमरी (७१) ने सिलिका-श्लिषि और क्लोरोफार्म-ब्युटेनाल विलायकों के उपयोग से लैक्टिक अम्ल के एक-अंश, द्वि-अश और त्रि-अंश को उसके बहु-अंशो[4] से पृथक् किया है। अब अधिक तेज भास्मिक[5] आयन-विनिमय-कारी पदार्थों के आविष्कार से संभवतः कार्बनिक अम्लों का पृथक्करण अधिक सुगमता से हो सकेगा।

1. Effluent   2. Extraction   3. Gradient Elution
4. Polymers   5. Strongly basic

परिवर्धित[1] विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी

अब ऐसी दो विधियो का वर्णन किया जायेगा जिसमें प्रक्रिया केवल सरल विभाजन ही नहीं है। पहली विधि तो वह है जिसका लेह (७२) ने वर्णन किया है। आपने पेनीसिलीनों को उनके त्रि-अमीन लवणो के रूप मे पृथक् किया। एक प्रयोग मे एथिल ऐसीटेट (१५०० मिलीलीटर) मे सिलिका-श्लिषि (५०० ग्राम) के आलम्बन की जल (३५० मिलीलीटर) के साथ पन्द्रह मिनट तक प्रक्रिया की गयी। तत्पश्चात् घेप (गारे) मे नार्मल-एथिल हेक्सामेथिलीन इमीन (२५ मिलीलीटर) को घेप मे मिला दिया गया। इसको साधारण रूप से स्तम्भ-धारक मे डाला गया और बहिरागामी एथिल ऐसीटेट को स्तम्भ मे बहने दिया गया, जब तक उसकी नियत ऊँचाई न बन गयी। श्लिषि पर उदासीन कार्बनिक अम्लो की कोई प्रतिक्रिया नही होती। पेनीसिलीनों के मिश्रण को एथिल ऐसीटेट मे घोलकर लगाया गया और जब वे उपर्युक्त स्तम्भ में नीचे खिसकते है तो उनके अमीन लवण बनते जाते है।

बर्स्टल, डेवीस एवं वेल्स (७३) ने सेल्युलोज स्तम्भो पर धातुओं का पृथक्करण किया है। इसमें विभाजन, अधिशोषण और चयनशील निःसारण[2] सभी का संभवतः उपयोग होता है। सहायक द्रव्य छनने कागज़ की लुगदी है जो उबलते हुए तनु नाइट्रिक अम्ल मे थोड़ी देर डालकर विशेष रीति से साफ की जाती है। यह लुगदी कार्बनिक विलायक मे मिलाकर स्तम्भ मे भरी गयी। धातुओ का जलीय विलयन (साधारणतया हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में) स्तम्भ के ऊपर लगाया गया। तत्पश्चात् विलायक को बहने दिया गया। चूँकि धातुएँ पृथक् हो जाती हैं, अतः वे स्तम्भ मे नीचे खिसकने लगती है और अंत मे वे निष्कासक के साथ निकल आती हैं; अब इनको उपर्युक्त विधि से प्राप्त किया जा सकता है।

उदाहरणतया, निकल, कोबाल्ट और ताम्र के पृथक्करण एवं परिमापन मे स्टील अथवा खनिज पदार्थों के ०·२ ग्राम नमूने को तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मे घोलकर स्तम्भ पर लगा दिया गया। मेथिल प्रोपिल कीटोन (१०० भाग), ऐसीटोन (३० भाग), जल (४ भाग) और साद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (१ भाग) को मिलाकर विलायक बनाया गया। इससे निष्कासन करने पर सबसे पहले

1. Modified 2. Selective extraction

पीली पिट्टी के रूप में लोह निकलता है; तत्पश्चात्, ताँबे की अम्बर पट्टी निकलती है। जब इन दोनों का निष्कासन हो जाता है तो विलायक बदल दिया जाता है—अब यह मेथिल प्रोपिल कीटोन रहता है जिसमें आयतन के अनुसार २ प्रतिशत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल रहता है। यह विलायक कोबाल्ट को निकल से पृथक् कर देता है। इस विधि से प्राप्त इन धातुओं के परिमापन-मान साधारण विधि से किये गये परिमापन-मानों से भली-भाँति मिलते थे।

दूसरे विलायकों का उपयोग करके अन्य धातुओं का भी पृथक्करण किया गया है। बर्स्टल एवं वेल्स (७४) के बाद के शोध-निबंध मे इसी विधि से यूरेनियम के पृथक्करण एवं परिमापन का वर्णन किया गया है।

वसीय अम्लों[1] का पृथक्करण

कई वैज्ञानिकों ने मौलिक विभाजन-स्तम्भ का परिवर्धन करके वसीय अम्लो को पृथक् करने का प्रयास किया है। एल्सडन (७५) ने इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यहाँ पर इनका वर्णन नही किया जा रहा है, क्योंकि मार्टिन की गैस-द्रव विभाजन-विधि इस कार्य के लिए अधिक उपयुक्त है। एल्सडन ने यह बताया कि विभिन्न कार्बनिक अम्लों एवं जल मे एक ही सजातीय श्रेणी के पदार्थों का विभाजन-गुणक, कार्बन परमाणुओं की संख्या के साथ बढ़ता जाता है। अतः सरल विभाजन विधि से उनके समाशो[2] का अथवा पाँच कार्बन परमाणुओं से अधिक वसीय अम्लों का पृथक्करण अच्छी तरह नही हो पाता। अतः मोयल, बाल्डविन एव स्कैरिसब्रिक (७६) ने ऐसी सिलिका-श्लिषि का उपयोग किया जिसमे क्षारीय फास्फेट प्रतिरोध अधिक मात्रा में थे; क्लोरोफ़ार्म एवं नार्मल ब्युटेनाल का गतिशील विलायक रूप में प्रयोग किया गया। इस विधि से उन्होने आठ कार्बन परमाणुओ वाले वसीय अम्लों को पृथक् कर लिया। पेटर्सन एवं जान्सन (७७) ने बेंजीन एव सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल का विलायक रूप में प्रयोग किया; इन वैज्ञानिकों ने सिलिका के स्थान पर सीलाइट ५४५ का भी सहायक-द्रव्य के स्थान पर उपयोग किया। इस प्रकार आप कुछ अधिक परमाणुओ वाले वसीय अम्लों को पृथक् कर सके। रैमजे एवं पैटर्सन (७८) ने विलायक के लिए फ़र्फ़्यूराइल ऐल-

1. Fatty acids 2. Isomers

कोहल और २-अमीनो पिरीडीन, एवं नार्मल हेक्सेन का उपयोग किया; सहायक-द्रव्य के लिए "सिलिसिक अम्ल" (Mallin Krodt's S. L. Grade के अवक्षेपित चूर्ण) का उपयोग किया गया। इस प्रकार आपने १२, १४, १६ एव १८ कार्बन परमाणुओ वाले वसीय अम्लों के मिश्रण को पृथक् किया, ११, १३, १५, १७ एवं १९ परमाणु वाले अम्ल भी पृथक् किये गये। पर १८ एव १९ परमाणु वाले अम्लों का मिश्रण पृथक् नही किया जा सका। इन्ही वैज्ञानिको ने आइसोआक्टेन एवं २, २, ४—ट्राइमेथिलपेंटेन का भी विलायक रूप में उपयोग किया। इस प्रकार कैप्रिक, पेलारगोयनक, कैप्रिलिक, एनैन्थिक, कैप्रोइक और वैलीरिक अम्लों के मिश्रण को पृथक् (७९) किया गया।

हावर्ड एवं मार्टिन (८०) ने "पलटी हुई फेज" की द्रव-द्रव विभाजन-विधि का उपयोग किया, इसमें हाइफ्लो सुपरसेल की डाइक्लोरो डाइमेथिल साइलेन से प्रक्रिया करके उसे जल-आकर्षक[1] बना दिया गया था। विलायको के रूप मे मेथेनाल-आक्टेन और जलीय ऐसीटोन, एव औषधीय पैराफीन का उपयोग किया गया। वाद वाले विलायक का उपयोग करके लारिक से स्टीयरिक (सीधी शृखला वाले) अम्लों तक का पृथक्करण कर लिया गया।

यह याद होगा कि बोल्डिंघ (८१) ने भी छनने-काग़ज पर 'पलटे हुए फ़ेज' का उपयोग किया था। छनने काग़ज को वल्कनाइज किये रबर के लैटेक्स[2] (तनु) से भिगो लिया गया था; तत्पश्चात् उसे वायु मे सुखा कर ऐलकोहल से और उसके बाद ऐसीटोन से एक बार धो कर हवा में सुखा लिया गया था। प्रयोग करने के पहले तक उसे ऐसीटोन पर ही रखा रहने दिया गया था। बोल्डिघ ने स्टीयरिक, पामिटिक, मिरिस्टिक, लारिक, ओलीक और इरूयूरिक अम्लो के अलग-अलग सा श्र मान दिये है। विलायक रूप मे केवल मेथेनाल अथवा मेथेनाल-ऐसीटोन (५०-५०) का उपयोग किया गया।

गैस-द्रव विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी

जेम्स एव मार्टिन ने १९५२ मे इसका सबसे पहले वर्णन किया। स्तम्भ-धारक ५ फुट लबी शीशे की नली थी और इसका व्यास ४ मिलीमीटर था। इसमें

1. Hydrophobic 2. Latex

कीसेलग्हुर भरा गया उसमे थोड़ा-सा सिलीकोन भी मिला दिया गया था, जिससे वह द्रव फ़ेज़ बन जाय। भरे हुए स्तम्भ की लबाई ४ फुट थी। गैस फेज के रूप में नाइट्रोजन-धारा का उपयोग किया गया। जिस पदार्थ का विश्लेषण होने वाला था उसको वाष्प रूप मे परिवर्तन करके नाइट्रोजन-धारा के साथ ही प्रविष्ट कर दिया गया। स्तम्भ के चारों ओर एक ऐसी व्यवस्था होती है जिससे उसमे उबलता द्रव सारे उपकरण के ताप को नियत रख सके। पृथक् किये हुए मिश्रण के अवयव नाइट्रोजन-धारा के साथ बाहर निकलते है, धारा एक अनुमापन-सेल[1] में बुलबुलाती है। इन वैज्ञानिकों ने सेल में ऐसी युक्ति लगायी जिससे अनुमापन अपने आप हो सके। यहाँ पर अन्य पहचान विधियों का भी उपयोग हो सकता है। चित्र १६ में उनके द्वारा उपयुक्त उपकरण की व्यवस्था दिखायी गयी है।
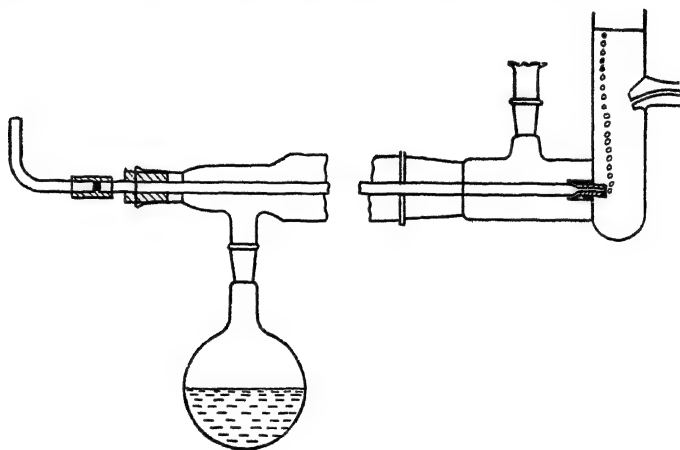
चित्र १६—गैस-द्रव विभाजन विधि में उपकरण की व्यवस्था (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ८२, जेम्स एवं मार्टिन से परिवर्धित)

इस विधि की उपयोगिता इससे स्पष्ट हो जायेगी—इन वैज्ञानिकों ने ११ फ़ुट लंबे स्तम्भ से १३७° तापक्रम पर ऐसीटिक, प्रोपियानिक, आइसोब्युटिरिक,

1. Titration Cell

नार्मल ब्युटिरिक, ट्राइमेथिल ऐसीटिक, आइसोवैलीरिक, मेथिल एथिल ऐसीटिक और नार्मल वैलीरिक अम्लों को पूर्ण रूप से पृथक् कर लिया और इसमे केवल दो घंटे लगे।

चार मिलीमीटर चौड़ी नली वाले इस उपकरण में श्रेणी के निम्न अम्लो की अधिक से अधिक एक मिलीग्राम मात्रा को लिया जा सकता है। कम से कम मात्रा वह हो सकती है जिसका प्रयोग में लायी अनुमापन-विधि से ज्ञान हो सके; इस प्रयोग में यह कम से कम मात्रा ०.०२ मिलीग्राम थी क्योकि ब्युरेट मे ०.०४ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड भरा गया था। स्तम्भ के गोल-काटीय[1] क्षेत्रफल को बढाया जा सकता है जिससे अधिक मात्रा मे अम्लों को पृथक् किया जा सके।

स्तम्भ की तैयारी

कीसेलग्हुर (Celite 454, John Manville) के कण विभिन्न नाप के होते है। सूक्ष्म कणों को १८ सेंमी० लंबे बीकर मे कीसेलग्हुर का आलम्बन करके पृथक् किया जा सकता है क्योकि ये तीन मिनट मे नीचे नही बैठ पाते और उनको निथार कर फेंका जा सकता है। जो पदार्थ नीचे बैठ जाता है उसे तीन घण्टे तक ३००° पर मफल भ्राष्ट्र[2] में गरम किया जाता है। तत्पश्चात् उसे साद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से धोकर क्षारीय अशुद्धियो को दूर कर दिया जाता है। हाइड्रोक्लोरिक अम्ल को दूर करने के लिए उसे बार-बार जल से धोया जाता है और अन्त मे पदार्थ को १४५° पर ऊष्मक में सुखा लिया जाता है।

द्रव फेज़ डी०सी० ५५० सिलीकान (Albright and Wilson, Oldbury, Birmingham) होता है। जब इसे वसीय अम्लों के पृथक्करण मे इस्तेमाल करना होता है तो इसमे भार के अनुसार १०.प्रतिशत स्टीयरिक अम्ल भी होता है। स्टीयरिक अम्ल के कारण पृथक्करण अच्छा होता है, क्योकि सम्भवतः इसकी उपस्थिति से वसीय अम्ल के अंश टूट[3] जाते है। स्तम्भ को भरने के पहले द्रव फेज को भार के अनुसार १ . २ (द्रव : ठोस) के अनुपात मे कीसेलग्हुर से मिला लिया जाता है।

स्तम्भ-धारक के एक सिरे को खीचकर मोटी दीवार वाली केश-नली (लगभग

1. Cross-sectional 2. Muffle Furnace 3. Dimerisation

१।४ मिलीमीटर व्यास वाली) बना ली जाती है। तत्पश्चात् साइकिल की वाल्व वाली रबर की पतली नली के छोटे टुकड़े को इसमे घुसेड़ कर उसे उस बिन्दु पर जल-रोधक[1] बना लिया जाता है जहाँ से वह अनुमापन-सेल में प्रवेश करती है। स्तम्भ को भरने के पहले स्तम्भ-धारक के नीचे "फाइबरग्लास"[2] के सूत (900।1।4; Fibreglass Ltd., Firhill, Glasgow, N. W. से प्राप्य) की छोटी गद्दी रख दी जाती हे जिससे कीसेलग्हुर केश-नली तक न पहुँच सके; इस प्रकार, केश नली को रुँधने से बचा लिया जाता है। स्तम्भ के दूसरे सिरे पर एक कीप लगा दी जाती है और उसे रबर की पतली नली से जोड दिया जाता है। कीप को कीसेलग्हुर मिश्रण से आधा भर लिया जाता है। तब स्तम्भ-धारक को ऊर्ध्वाधर स्थिति में रखा जाता है और उसे ऐसे वैद्युत मोटर से जोड़ दिया जाता है जो उसे हिला सके। जेम्स और मार्टिन ने जिस मोटर का उपयोग किया था, वह एक मिनट में सात हजार गोल चक्कर करके सात हजार बार नली को चपटी[3] तरह से हिलाता था। ऐसा करने से कीसेलग्हुर धीरे-धीरे नीचे बैठने लगता है और स्तम्भ मे बराबर धक्का लगने के कारण वह अच्छी तरह से बैठने लगता है। यह भरने की प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक स्तम्भ ४ फुट लम्बा नही हो जाता। तत्पश्चात्, "फाइबर ग्लास" की दूसरी गद्दी रख दी जाती है जिससे कीसेलग्हुर के विभिन्न स्तम्भ अपने स्थान मे रहे।

यदि अधिक लम्बे स्तम्भ को तैयार करना है तो इसी भाँति भरे हुए स्तम्भों को रख कर शीशे के एक बडे बाष्प पात्र[4] में पास-पास रख दिया जाता है; उनके सिरों को मोटी दीवार वाली केश-नलियो से अर्द्ध-चन्द्राकार रूप मे जोड़ दिया जाता है। एक ही पात्र मे रखने से उनका तापक्रम एक समान रखा जा सकता है।

वाष्प-पात्र

वाष्प पात्र को एक इच व्यास वाली शीशे की नली से बनाया जाता है और उसके जोड़ घिसे हुए होते है जैसा चित्र १६ मे दिखाया गया है। स्तम्भ-धारक एक ओर तो साइकिल के वाल्व मे उपयुक्त रबर नली से जुड़ा होता है और दूसरी ओर

1. Water-tight 2. Fibreglass 3. Horizontal
4. Vapour Jacket

रबर की डाट के छेद से। अतः वाष्प पात्र में उबलने वाले द्रव का चयन सीमित होता है—केवल वे ही द्रव उपयोग में लाये जा सकते है जो रबर को खराब न करें। इसके लिए जल के अतिरिक्त तीन उपयुक्त द्रव है—मेथेनाल, सेलो साल्व[1] एवं एथिलीन ग्लाइकोल; इन के क्वथनाक क्रमशः ६५.४°, १३७° एव २००°है। क्वथनांक का निर्णय पृथक् किये जाने वाले पदार्थो के वाष्प-दाबो को ध्यान मे रखकर किया जाता है। ये पारे के १० और १००० मिलीमीटर दाब के बीच मे होते हैं। उदाहरणतया, फार्मिक से वैलीरिक अम्लो तक के लिए जल उपयुक्त है और वैलीरिक से लारिक अम्लो के लिए सेलोसाल्व उपयुक्त है।

स्वतः अनुमापन उपकरण[2]

इसके लिए मौलिक शोध-निबन्ध पढ़िए।

प्रयोग करने की विधि

सबसे पहले उपकरण को उस ताप पर लाना चाहिए जिस पर प्रयोग करने का निर्णय किया गया है। तब वसीय अम्लों के नमूने को "फाइबर ग्लास" की गद्दी पर सूक्ष्म-पिपेट द्वारा लगा दिया जाता है। नली के चौड़े सिरे पर रखे नमूने में जल बिलकुल नहीं होना चाहिए, अन्यथा पृथक्करण नही हो पाता। इन वैज्ञानिको ने इन अम्लों के सोडियम लवणों से जलरहित अम्ल बनाने की विधि का भी वर्णन किया है।

तत्पश्चात्, नाइट्रोजन धारा का प्रवेश किया जाता है। सुगमतम विधि तो यह है कि उसे सिलिंडर मे से ले लिया जाये और उसे दाब स्थिर रखने वाले एवं प्रवाह-मापी उपकरणों से जोड़ दिया जाये। स्तम्भ तक पहुँचने पर गैस को सुखा भी लेना चाहिए। उसके प्रवाह को २० से ५० घन सेंटीमीटर प्रतिमिनट तक रखा जाता है। यह याद रखना चाहिए कि प्रवाह की गति को घटाने से पृथक्करण तो अधिक अच्छे होते है, पर प्रयोग करने के समय में वृद्धि हो जाती है। तत्पश्चात् (रेकार्ड लेने वाले ड्रम को नियन्त्रित करने वाली) वैद्युत-घड़ी को चला दिया जाता

1. Cellosolve 2. Automatic titration gear

है और अनुमापन सेल मे ८ मिलीलीटर जलीय फीनोल रेड सूचक को बहने दिया जाता है। यदि नियन्त्रण अपने आप होता हो तो सांद्रण ०.००१ प्रतिशत रखन। चाहिए। स्वतः अंकन नियन्त्रण[1] में सांद्रण ०.०१ प्रतिशत रखना चाहिए। स्तम्भ धारक के महीन छोर से गैस के जो बुलबुले निकलते है, वे अनुपान-सेल[2] मे रखे पदार्थों को पर्याप्त रूप से हिला कर चला देते है। किन्तु जब गैस का प्रवाह काफी कम रखा जाता है, तो अनुमापन-सेल मे नाइट्रोजन की दूसरी धारा के चलाने से लाभ होता है। सबसे अन्त मे फोटो-वैद्युतीय नियन्त्रण[3] उपकरण को स्विच दबा कर चला दिया जाता है।

वसीय अम्ल स्तम्भ मे से निकल कर अनुमापन-सेल में आते है और वहाँ उनका अनुमापन स्वयमेव होता है। इसके फलस्वरूप घूमते हुए ड्रम पर वक्र के कई भाग बन जाते है। प्रत्येक भाग एक वसीय अम्ल का होता है, और उस की ऊँचाई अम्ल के सांद्रण पर निर्भर होती है। एक ही स्तम्भ को कई बार उपयोग मे लाया जा सकता है। वसीय अम्लों के पृथक् करने का एक उदाहरण चित्र १७ मे दिखाया गया है।

जेम्स एव मार्टिन ने ज्ञात किया कि वसीय अम्लो की प्राप्ति परिमाणात्मक रूप से होती है। ऐसी कोई भी बात नही मिली जिससे यह कहा जा सके कि अनुमापन-सेल में वसीय अम्लो का अवशोषण अपूर्ण रहा। इन वैज्ञानिकों ने जो सैद्धान्तिक विवेचना की है, उसमें उनके द्वारा दिये गये मान प्रायोगिक मानों से अच्छी तरह मिलते है।

(सारणी अगले पृष्ठ पर देखें)

1. Automatic Contsol
3. Titration cell
2. Photo-electric Control unit

सारणी-२

अम्ल	क्वथनांक	ग्रहण-आयतन (१००°)	ग्रहण-आयतन (१३७°)
फ़ार्मिक	१०७.७	०.०७६	—
ऐसीटिक	११८.१	०. २०	०.२६
प्रोपियानिक	१४१.१	०. ४७	०.५४
आइसो-ब्युटिरिक	१५४.४	०. ७७	०.८१
नार्मल-ब्युटिरिक	१६३.५	१. ००	१.००
ट्राई मेथिल ऐसीटिक	१६३.८	१. १५	—
आइसो-वैलीरिक	१७६.७	१. ५१	१.४८
मेथिलएथिल ऐसीटिक	१७७	१. ७०	—
नार्मल वैलीरिक	१८७	२. १७	१.९१
आइसो-कैप्रोइक	१९९.१	—	२.९४
नार्मल-कैप्रोइक	२०५	—	३.५८
हेप्टोइक	२२३.५	—	६.५५
कैप्रिलिक	२३७.५	—	१२.०
पेलारगोनिक	२५४	—	२२.०
कैप्रिक	२६८.७	—	४०.५
अनडेकानोइक	२२५(१००मिमी०*)	—	७२.८
लारिक	२२५(४०मिमी०)	—	१३८.५

*. मिमी०=मिलीमीटर।

अमोनिया एवं मेथिल-अमीनों का पृथक्करण

जिस गैस-द्रव क्रोमैटोग्राम का अभी वर्णन किया गया है उसी के सरल परि-वर्द्धन से जेम्स, मार्टिन एव हावर्ड स्मिथ (८३) ने अमोनिया और तीन मेथिल अमीनों के मिश्रण को पृथक् किया। जेम्स एवं मार्टिन द्वारा स्तम्भ बनाने की विधि में उपर्युक्त वैज्ञानिकों ने थोड़ा परिवर्तन किया। यह पता चला कि कीसेलगुर असक्रिय नहीं था, क्योंकि उस पर अमीनो के अवशोषण[१] से दूर तक फैली हुई बेढगी

1. Absorption

पट्टियाँ बनती थी। इसको निम्नलिखित प्रकार से काफी हद तक दूर कर लिया गया।

कीसेलग्हुर के कणों को एक ही प्रकार का बना करके, उसे प्रज्वलित किया गया। तत्पश्चात् उसे वसीय अम्लों में प्रयुक्त होने वाले कीसेलग्हुर की भाँति धोया गया। इसके बाद उसे मेथेनाल में सोडियम हाइड्राक्साइड (५ प्रतिशत) के विलयन मे डाला गया। ऊपर उठे द्रव को निथार कर कीसेलग्हुर को १००° पर सुखा दिया गया और उसे सोडियम हाइड्राक्साइड वाले शोषित्र[1] में रख लिया गया।

द्रव फ़ेज़ के लिए ७ ग्राम कीसेलग्हुर को ३ ग्राम द्रव से मिलाया गया। जब द्रव फ़ेज़ १५ प्रतिशत द्रव-पैराफ़ीन था, तो पृथक्करण अच्छे हुए (देखिए, चित्र १७)।
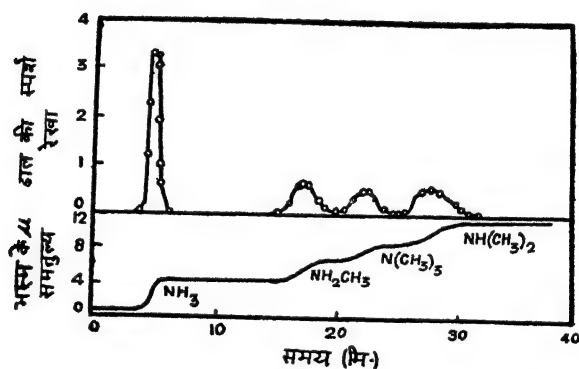
चित्र १७—अमोनिया एवं एक तृतीय-, तथा द्वि-मेथिल अमीनों का पृथक्करण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ८३)

द्रव फेज की रचना में अन्तर कर देने से ग्रहण-आयतन एवं मिश्रण के अवयवों के निकलने के क्रम मे अन्तर पड़ जाता है। जब चार अवयवो में से कोई फ़ेज़ ज्ञात हो, तो इन वैज्ञानिकों द्वारा वर्णित दूसरे फ़ेज़ो में से किसी अन्य फ़ेज से प्रयोग अधिक लाभदायक होता है।

1. Desiccator

अमीनों के मिश्रण को उनके भस्म को ऐलकोहल में घोलकर (२० प्रतिशत विलयन में ३ माइक्रोलिटर) स्तम्भ पर लगाते है या कोई और सुगम विधि से अमीन-लवणों का विलयन बना लेते है। यदि भस्म के जलीय विलयनो का उपयोग किया जाये, तो पृथक्करण अच्छा नही होता।

अच्छे पृथक्करण के लिए चार फुट लम्बे एव ४ मिलीमीटर व्यास वाले स्तम्भ में पदार्थो की अधिक से अधिक आने वाली मात्रा यह है—अमोनिया–१६० माइक्रोग्राम, मोनो अथवा डाइ-मेथिल अमीन–१८० माइक्रोग्राम, ट्राइमेथिल अमीन–२२० माइक्रोग्राम। जिस अनुमापन-युक्ति का उपयोग किया गया, उससे ०.३ माइक्रो-तुल्य[1] पदार्थ पहचाने जा सकते है; ये अमोनिया, मोनो-, डाइ- एव ट्राइमेथिल अमीनों के क्रमशः २, ४, ७ एवं ८ माइक्रोग्रामो के बराबर होते है।

अनुमापन-विधि[2]

जेम्स एवं मार्टिन द्वारा उपयुक्त स्वत.चाली अनुमापन विधि मे ०.०४ नार्मल सल्फ़्यूरिक अम्ल का प्रयोग होता है और ०.००७ प्रतिशत जलीय मेथिल रेड का सूचक की भाँति उपयोग होता है। ऐसी दो और विधियो से अनुमापन किया गया जिसमें अनुमापन विधि स्वत.चाली नहीं थी। इनमे अम्ल की इतनी मात्रा डाली जाती है कि अनुमापन-सेल में रखा क्षार उदासीन हो जाये। इस विधि मे अम्ल डालने के समय का उसकी मात्रा के साथ ग्राफ बना लिया जाता है।

इनमें से सरलतर विधि मामूली कामों के लिए अच्छी है। एक शुडाकार[3] फ़्लास्क लेते है और उसमे अन्दर फूँकने वाली और बाहर निकालने वाली नली इस प्रकार फ़िट कर देते है, जैसी जल की धावन-बोतल मे[4] लगी होती है। अन्दर फूँकने वाली नली मे रबर की नली लगा दी जाती है और जब इसको एक सिरे पर पकड़कर दबाते है (फूँकते नही), जैसा धावन-बोतल मे होता है तो बाहर निकालने वाली नली से द्रव की बूँदे अनुमापन-सेल मे गिरती है। एक बूँद का आयतन पहले से ही ज्ञात कर लिया जाता है और यह मान लेते है कि यह नियत होता है। इस विधि से दो कार्यकर्ता बडी आसानी से काम कर लेते है—एक अनुमापन करता है और दूसरा बूँद गिनता हुआ समय नोट करता रहता है।

1. Micro-equivalents
2. Titration procedurs
3. Conical
4. Wash-bottle

दूसरी विधि में एक विशिष्ट प्रकार से ब्युरेट बनाते है (देखिये चित्र १८)। ब्युरेट में एक गहराई सूक्ष्म-मापी[1] होता है, जैसे "ऐगला" सिरिन्ज ("Agla"
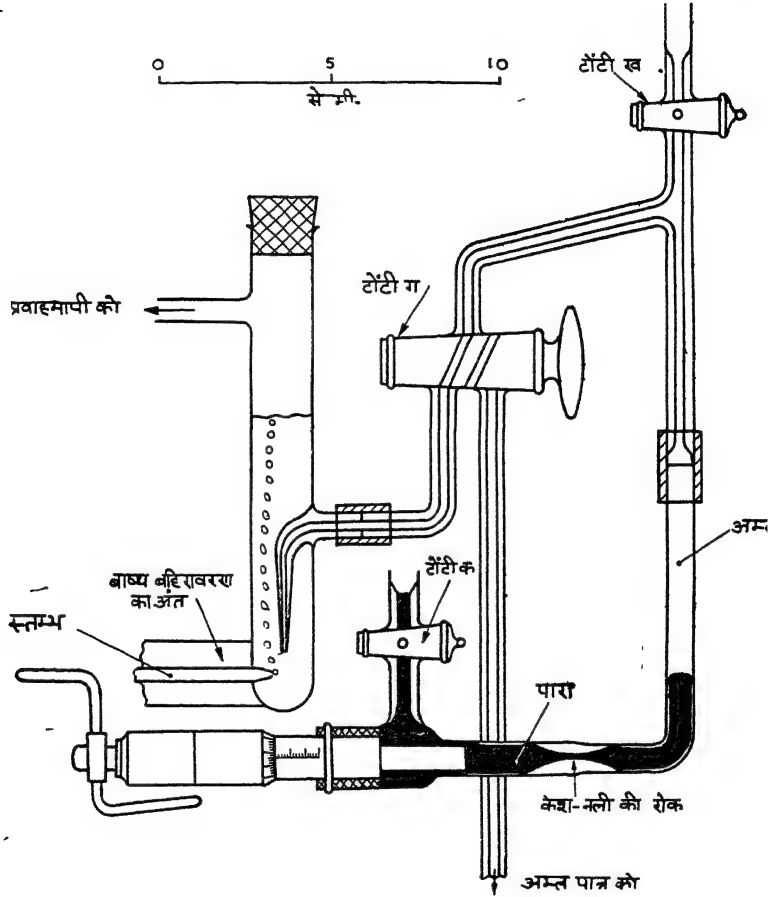
चित्र १८—सूक्ष्म ब्यूरेट (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ८३, जेम्स, मार्टिन एवं हावर्ड स्मिथ के आधार पर)

1. Depth micrometer

Syringe—Burroughs Wellcome))। इसे रबर की नली से पारे के पात्र के पास कस कर पकड़ते है। बाये हाथ से इसको साध लेते है और दाहिना हाथ लिखने के लिए रखते है। सूक्ष्म-मापी के ऊपरी हिस्से को जब घुमाते हैं तो उससे पारे का विस्थापन होता है और इससे अम्ल अनुमापन-सेल में प्रवेश करता है। ब्युरेट को चलाने के लिए टोटी (क) और (ख) आवश्यक नही है, पर इनसे ब्युरेट को पहले भरने में आसानी होती है।

इस विधि से वाष्पशील ऐलीफ़ैटिक अमीनो और पिरीडीन के सजातीय यौगिकों को जेम्स (११२) ने पृथक् किया है।

अमीनो-अम्लों की विभाजन-क्रोमैटोग्राफ़ी

मूर एवं स्टाइन (५,८४) ने कुछ अद्भुत प्रयोगो का वर्णन किया है। इसमें प्रोटीन के जल-विश्लेषण से प्राप्त अमीनो-अम्लो को पृथक् करके उनका परिमापन किया गया है। इन वैज्ञानिको ने ३०×०.९ सेमी० व्यास वाले स्तम्भ को लेकर उसमे आलू का स्टार्च भरा। सरल विलायक, जैसे, नार्मल ब्युटेनाल, नार्मल प्रोपेनाल और ०.१ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का (१ : २ : १ के अनुपात मे) उपयोग किया गया। बहने की गति बहुत धीमी थी (१.२५ मिलीलीटर प्रति घण्टा)। अतः एक प्रभाजन[1] कई दिनों तक चलता रहा और इस बीच में ० ५ मिलीलीटर नमूने अपने आप स्वतःचाली अंश एकत्रक में जमा होते रहे और उनकी बूंदें अपने आप गिनी जाती रहीं। अमीनो-अम्लों का परिमापन उनके निनहाइड्रिन से मिलकर बने रंग के वर्णक्रम-फोटो-मापी[2] विधि से हुआ। केवल ५ मिलीग्राम अमीनो-अम्लों, जिनमे १८ या उससे अधिक अमीनो-अम्ल होते है, का भी भली-भाँति पृथक्करण हो जाता है। कृत्रिम[3] मिश्रणों का परिमापन ३ प्रतिशत तक हो जाता है। अभी हाल मे ही इन वैज्ञानिको ने इस विधि मे परिवर्तन किया और स्टार्च के स्थान पर आयन-विनिमय रेजिन का उपयोग किया। ऐसा करने से प्रयोगो की पुनःशीलता[4] बढ़ जाती है और पृथक्करण भी अच्छे होते है; सूक्ष्म मात्रा में उपस्थित कार्बोहाइड्रेट की मिलावटों से भी छुटकारा मिल जाता है; और प्रोटीन

1. Fractionation
2. Spectrophotometrc
3. Synthetic
4. Reproducibility

को लवण-रहित करने[1] का भी झंझट नही रहता। उदाहरणतया, रक्त प्लाज्मा और पेशाब का विश्लेषण करने के पहले उनको लवण-रहित करना पड़ता था। इन स्तम्भो पर अमीनो-अम्लो के पृथक् होने का क्रम विभिन्न जरूर था।

प्रवाह-विरोधी वितरण[2]

क्रेग और उसके साथियो (८५,८६) ने ऐसे उपकरण के कई रूपो का वर्णन किया है जिससे दो विलायको मे क्रम-पूर्वक वितरण हो सके। इस उपकरण का भी सिद्धान्त वही है जिसका अध्याय १ (माचिस की ढेरी वाले प्रयोग) मे वर्णन किया गया है।

इस उपकरण का निर्माण इस प्रकार होता है—अकलुष इस्पात के बराबर व्यास वाले दो सिलिंडर लिये जाते है। उनकी मुख्य धुरी की समान्तर परिधि पर बेलनाकार छिद्रो को एक लकीर में काट लिया जाता है। तब सिलिडरो को ऐसी जगह पर चपटा करके एक दूसरे पर इस प्रकार रखा जाता है जिससे वे द्रव-रोधक[3] होकर फिट हो जाये। उनके दूसरे भागों को भी घिसकर इतना चपटा कर लिया जाता है कि वे शीशे की प्लेटों पर जम सकें। बेलनाकार छिद्र इतने दूर-दूर रखे जाते है कि सिलिडरो को इच्छानुसार चलाने पर छिद्रो की एक श्रेणी बन्द हो जाये और दूसरी खुली रहे। नीचे वाले सिलिडर के कोषो मे एक विलायक भर दिया गया और दूसरे विलायक की थोड़ी मात्रा को दूसरे सिलिडर के कोषो में भर दिया गया। तत्पश्चात् नीचे वाला सिलिंडर इतना हिलाया गया जिससे विभाजन का सन्तुलन हो जाये। इसके बाद उसे थोडी देर तक यो ही रहने दिया गया जिससे विलायक पृथक् हो जाये। अब ऊपरी सिलिडर को थोडा घुमा कर खिसकाने से यह सम्भव था कि उसके सिलिंडर का कोष नीचे वाले सिलिंडर के कोष (जिसमे सन्तुलन अवस्था आ चुकी थी) के सामने आ जाये। इसी प्रकार बार-बार घुमाने से ऊपरी सिलिडर को नीचे वाले सारे कोषो के सामने लाया जा सकता है। पहले उपकरण मे २५ कोष (सेल) थे और बाद मे बनाये गये उपकरण मे ५४।

1. Desalting
2. Counter-current distribution
3. Liquid-tight

इन वैज्ञानिकों के बाद वाले शोध-निबन्ध में दूसरी डिजाइन का उपकरण था। इसमें २२० कोष थे। प्रत्येक कोष शीशे का बना था जिसके हिलाने की विधि और एक कोष में से विलायक को दूसरे में लाने की प्रक्रिया सिलिंडर को थोड़ा टेढ़ा करने पर ही हो जाती थी।

इस प्रवाह-विरोधी वितरण-विधि में ध्यान देने योग्य बात यह है कि गणित-सिद्धान्त इसमें अच्छी तरह से लगाये जा सकते है, और क्रोमैटोग्राफ़ी स्तम्भों की भाँति इसमें ठोस सहायक-द्रव्य के कारण गड़बड़ी होने की संभावना नही रहती। व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपकरण सरल नही है क्योकि इसमें पृथक् करने की क्षमता अधिक नहीं है। यह याद रखना चाहिए कि क्रोमैटोग्राफ़ीय स्तम्भो में हज़ारों सैद्धान्तिक प्लेटे (यहाँ पर के एक कोष के समान) होती हैं। इस कारण इसका यहाँ विस्तृत विवेचन नही किया गया है।

में तेजी से नीचे दौड़ता है। इसके फलस्वरूप अग्रभागीय-विश्लेषण की-सी दशा उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार, अम्लों के मिश्रण को ऐसे स्तम्भ मे लगाया जा सकता है जिसका विस्थापन ऐसे अम्ल से किया जा सके जो मिश्रण के दोनों अम्लों से अधिक तीव्र हो। ठीक इसी विधि से भास्मिक पदार्थो के मिश्रण को तीव्र अम्लीय रेज़िन के स्तम्भ पर पृथक् किया जा सकता है। भास्मिक रेजिन पर अम्लो के विस्थापन का क्रम, अथवा अम्लीय रेजिन पर भस्मों के विस्थापन का क्रम उनके विघटन-नियतांको[1] (अथवा PK मानों) पर निर्भर होना चाहिए; सयोजकता अथवा कुछ अन्य विचारों को छोड़ कर यह नियम ठीक भी पाया गया है।

ऊँची सयोजकता वाले आयन को नीची सयोजकता वाले आयन को विस्थापित करना चाहिए। धनायनो के लिए बोयड्, शुबर्ट एवं ऐडम्सन (८९) ने डिबाई-ह्यकेल पैरामीटर[2] को जलयुक्त आयन के व्यासार्ध का माप माना और इस प्रकार निष्कर्ष निकाला कि निष्कासन का क्रम यह होना चाहिए—

Na–NH_4–K–Rb–Cs (एक संयोजक आयन); Ba, Sr, Ca–Mg Zn, Cu–Ni–Co–Fe (द्वि-संयोजक आयन)। कोह्न एव कोह्न (९०) ने यह निश्चित रूप से बताया कि डावेक्स ५० रेज़िन पर १.५ नार्मल हाइड्रो क्लोरिक अम्ल से एक-संयोजक आयन उपर्युक्त क्रम अर्थात् Na–K–Rb–Cs के अनुसार ही पृथक् हुए।

पृथक्करण की सीमा विशिष्ट प्रायोगिक व्यवस्था की बारीकियों पर निर्भर होती है। उन पदार्थो का जिनके PK मानों में ०.०५ या इससे भी कम का अन्तर है आसानी से, बिना किसी प्रायोगिक विस्तार के पृथक्करण किया जा सकता है।

मार्टिन एव सिन्ज द्वारा विभाजन-स्तम्भों की व्याख्या के लिए प्रतिपादित प्लेट-सिद्धान्त को मायर एव टामकिन्स (९१) ने आयन स्तम्भो की व्याख्या के लिए भी लगाया।

परिमाणात्मक दृष्टि से आयनीकृत पदार्थो की स्तम्भ से प्राप्ति पूर्ण रूप से होती है; कुछ दशाओं में अपवाद भी होते है, जैसे कुछ स्तम्भों मे आयन गतिशील बन जायें या सीधा आयन-विनिमय न होकर कुछ कारणो से आयन चिपकने भी लगे। शुष्क प्रोटीन के १० एवं २८० ग्रामों से दो प्रयोग किये गये ; इन दोनों मे शुद्ध केला-

1. Dissociaton Constants 2. Debye Huckel parameter

सीय अमीनो-अम्ल की उतनी मात्रा प्राप्त हुई जितनी उपयुक्त प्रोटीन की ६० प्रतिशत मात्रा के जल-विश्लेषण से होनी चाहिए। जिन ज्ञात स्थलों पर अमीनो-अम्ल बेकार गये, वे ये थे—केलासन में हानि, उन पट्टियों को फेंक देना जहाँ पर वे एक दूसरे से मिलती थी, और सम्भवतः जल-विश्लेषण की विधि में कुछ विच्छेदन। मिली-जुली पट्टियों के टुकड़ों को फेंकने के बजाय उनका दुबारा पृथक्करण किया जा सकता है, इस प्रकार अमीनो-अम्लों की मिली हुई पट्टियो मे हानि को केवल कुछ मिलीग्राम तक ही सीमित रखा जा सकता है।
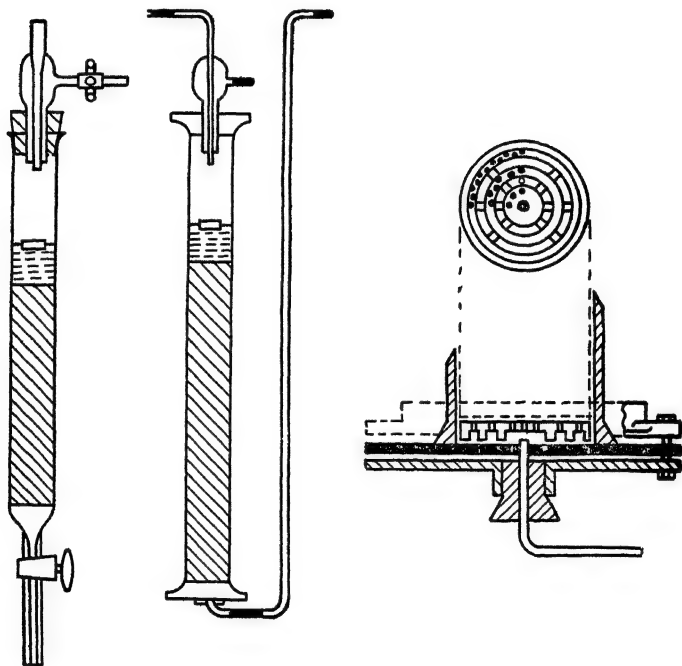
चित्र १९—आयन विनिमय क्रोमैटोग्राफी के लिए स्तम्भ की व्यवस्था (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ९२, पार्ट्रिज एवं ब्रिम्ले से परिवर्धित)

स्तम्भों की तैयारी

मध्यम नाप के स्तम्भ-धारक का, जिसका पार्ट्रिज की प्रयोगशाला मे उपयोग

हुआ, अन्दरूनी व्यास एक इंच का था और स्तम्भ की काम में आने वाली लम्बाई ९ अथवा १० इच की थी। सल्फ़ोनेटेड पाली-स्टीरीन के स्तम्भ की वास्तविक गहराई लगभग ६ इच होती है। चित्र १९ मे दो व्यवस्थाएँ दिखायी गयी है।

बायी ओर जो व्यवस्था है, वह एक इच अथवा उससे भी कम व्यास के लिए उपयुक्त है और यह उपकरण वे लोग भी आसानी से बना सकते है जिनको शीशा फूंकने की थोड़ी-सी भी कला आती है। दायी ओर जो स्तम्भ-धारक दिखाया गया है वह विशेष प्रकार के औद्योगिक शीशे की नली से (James A. Joblıng and Co., Ltd., Wear Glass Works, Sundelan, County Durham., से प्राप्य) बनाया गया है। इसी कम्पनी से फ्लैज[1] भी प्राप्त किये जा सकते है। इसके नीचे-ऊपर लगने वाली प्लेटो को प्रयोगशाला मे बनाया जा सकता है। इस प्रकार के स्तम्भ-धारक एक इच या उससे बड़े व्यास के लिए उपयुक्त है। रोधनियाँ[2] एवं द्रव प्रवेश करानेवाली नलियाँ मोटी दीवार की केश-नली से बनी होती हैं, इनका छिद्र एक-दो मिलीमीटर तक का होता है, जिससे मिल सकने वाले द्रवो का आयतन कम रहे। स्तम्भ मे द्रव प्रवेश कराने वाली नलियाँ शीशे की छोटी नलियाँ होती हैं जिनसे द्रव स्तम्भ के बीच में गिरता है; बाहरी ओर रबर की नली लगी होती है जो हवा में रहती है और इसके निचले सिरे पर नली को बन्द करनेवाला पेच-क्लिप[3] होता है। इन सबको प्रयोगलाशा मे बनाया जा सकता है; इसके स्थान पर एक इंच या उससे अधिक वाली दो नलियों का प्रयोग किया जा सकता है। बाहर निकासी की नली की व्यवस्था करने का मतलब यह है कि रेज़िन के ऊपर रहनेवाली द्रव की मात्रा का नियंत्रण किया जा सके। द्रव में ऐलकाथीन की डिस्क तैरती रहती है। इसके कारण रेजिन पर गिरने वाले द्रव से रेजिन की ऊपरी सतह की रक्षा होती रहती है, इससे रेजिन के ऊपर रहनेवाला द्रव थोडा हिलता भी रहता है। रेज़िन के ऊपर रहने वाले द्रव की मात्रा को कम से कम होना चाहिए; पर उसे इतना अवश्य होना चाहिए जिसमे डिस्क तैर सके, साधारण रूप से कुछ मिलीमीटर द्रव पर्याप्त होता है।

स्तम्भ के ऊपर इस प्रकार की व्यवस्था तब आवश्यक होती है जब स्तम्भो को एक क्रम से चलाना हो। जब कई स्तम्भों के वीच के आयतन द्रव से पूरी तरह

1. Flange 2. Stop-cocks 3. Screw clip

भर जाते है तो द्रव-धारा बराबर बहती है। जब स्तम्भ के ऊपर से द्रव अनियमित रूप से टपकता अथवा धँसता है तो कई स्तम्भो मे द्रव की यह धारा टूटी हुई सी चलती है।

चित्र के बायी ओर के स्तम्भ-धारक मे कॉच-ऊन की एक गद्दी रहती है और इसकी ऊपरी सतह को पिछले अध्याय में वर्णित विधि से कॉच की छड़ को चपटा करके सावधानी से बराबर कर दिया जाता है। दायी ओर वाले स्तम्भ-धारक मे नीचे की ओर ज़रा चौडी डिस्क होती है; जैसा चित्र मे दिखाया गया है, यह "पर्सपेक्स" को काटकर बनायी जाती है। इसे फाइबरग्लास से बुन कर बनायी गद्दी से ढँक दिया जाता है, जिससे रेजिन के छोटे कण चौडी डिस्क के छेदो को रुँधा न दें। जिस शीशे की नली से द्रव स्तम्भ के बाहर आता है वह रबर-नली से कसकर फ़िट होती है; इसका सिरा बहुत दूर तक नही जाना चाहिए, अन्यथा फैली हुई डिस्क की निचली सतह मे यह पेंदी तक जा लगती है जिससे द्रव के बहाव में रुकावट पडती है।

धातु की चौड़ी नली की छोटी लम्बाई, आखिरी-प्लेट से पीतल द्वारा जुडी होती है जिसमे मामूली काग लगा होता है। काग मे एक छेद होता है जिसमे शीशे की नली फिट रहती है। उसका काम यह होता है कि यदि दुर्घटनावश अचानक दबाव पडे तो यह रबर-नली के साथ में शीशे की नली के जोड़ को धक्के से बचाती है।

इस स्तम्भ का ऊपरी भाग भी वैसा ही बना होता है जैसा निचला भाग, पर उसमे चौड़ी डिस्क और फाइबर ग्लास नही होते।

ध्यान दीजिए कि स्तम्भ-धारक के ऊपरी सिरे पर काफ़ी रिक्त स्थान है। चित्र में दिखाये स्थान की अपेक्षा इसको कम किया जा सकता है, किन्तु यह याद रखना चाहिए कि स्तम्भ मे प्रक्रिया होते समय रेजिन का आयतन बढ जाता है; कभी-कभी तो यह बढ़ाव १० प्रतिशत तक होता है। अतः अच्छा यही है कि काफी अधिक स्थान छोड़ा जाये, जिससे बाद मे कोई परेशानी न हो।

स्तम्भ का भरना सरल है। रेजिन का घेप (गारा) बना कर स्तम्भ में डाला जाता है और उसे नीचे बैठने दिया जाता है। अधिकतर रेजिन, एक विशेष प्रकार के दानों के रूप मे मिलती है; जब उसके दाने नहीं होते तो उसे चलनी में चालने की आवश्यकता पड़ती है जिससे उसके सारे कण दो चलनियो के बीच के आकार

के हों, डेढ इच या इससे अधिक व्यास वाले स्तम्भो के लिए ६०-८० मेश[1] प्रतिइच वाली रेजिन उपयुक्त है, आधे से डेढ इंच व्यास के लिए ८०-१०० मेश प्रति इच वाली; आंधे इंच से कम व्यास वाले स्तम्भो के लिए और चलनी में प्रति इच और अधिक मेश होना चाहिए। रेजिन में से धूल और अत्यन्त महीन कणो को पानी निथार कर अलग कर लेना चाहिए। अच्छा हो, यदि रेजिन भरने के पहले उसे बीकर में डालकर उसका साइकिल चला दिया जाय, साइकिल चला देने के मतलब यह हैं कि उसकी एक बार अम्लीय और दूसरी बार भास्मिक विलयनो से प्रक्रिया की जाये। उदाहरणतया, पालीस्टीरीन, सोडियम के लवण रूप मे दानो के आकार में मिलती है। इस रेजिन को दो नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मे भिगो दिया जाता है, तत्पश्चात् उसे दो बार पानी से धोया जाता है। इसके बाद दो नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड मे भिगोया जाता है और अन्त मे उसे फिर पानी से धो लिया जाता है।

प्रयोग के पहले भरे हुए स्तम्भ को चालू करने[2] की आवश्यकता होती है। चालू करनेवाले द्रव की मात्रा बहाव के वेग और रेजिन के चयन पर निर्भर होती है; इन बातों पर शोध-कार्य अच्छी तरह से किया गया है। जियोकार्ब २१५ और सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भो को १ अथवा २ नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से चालू किया गया; अम्ल की मात्रा इतनी डाली गयी जिससे उसमे इतना अम्ल समा जाये कि स्तम्भ मे भरे रेज़िन से सयुक्त करनेवाले सोडियम की मात्रा से वह लगभग दस गुना हो। इस प्रकार, एक इच व्यास वाले सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भ को, जिसमें लगभग ०.१६ मोल[3] सोडियम आ सकता है, चालू करने के लिए डेढ़ लिटर नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का प्रयोग करना चाहिए। यदि द्रव की बचत करनी हो तो कभी-कभी चालू करने वाले द्रव की मात्रा को कम किया जा सकता है। अधिक तीव्र भास्मिक रेजिन, जैसे डावेक्स २, के स्तम्भ को चालू करने के लिए इससे भी अधिक द्रव की आवयकता होती है। यह द्रव इस प्रकार बनाया जाता है—२ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन मे १० ग्राम प्रति लिटर के हिसाब से बेरियम हाइड्राक्साइड मिला दिया जाता है; द्रव को इस्तेमाल करने के पहले छान लिया जाता है। यह देखा गया है कि तीव्र भास्मिक रेजिन

1. Mesh. 2. Regenerating 3. Mole

आशिक रूप से ही चालू हो पाती है; क्षार का बहाव रात में बन्द हो जाता है और दूसरे दिन प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। इस विधि मे रेजिन सतृप्त करनेवाले हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की मात्रा से चालू करने वाले आवश्यक क्षार को बीस गुना होना चाहिए। क्लोराइड से मुक्ति के लिए अम्लीय सिल्वर नाइट्रेट की परख करनी चाहिए। यदि "ऐनालार"[1] सोडियम हारड्राक्साइड का प्रयोग किया जाये तो बेरियम हाइड्राक्साइड को मिलाने की आवश्यकता नही पडती।

पृथक्करण के पहले सब रेजिनो के स्तभ में से चालू करने वाले द्रव को अच्छी तरह धो डालना चाहिए। इसके लिए आसुत जल की अपेक्षाकृत थोड़ी मात्रा पर्याप्त होती है; विधि को आरम्भ करने के पहले लिटमस कागज से परख कर लेनी चाहिए। भास्मिक रेजिनों से काम करते समय यह आवश्यक है कि कार्बनडाइआक्साइड को दूर रखा जाये, अतः उपयोग के पहले आसुत जल को भी उबाल कर ठण्डा कर लेना चाहिए।

अनेक स्तम्भ

यद्यपि पृथक्करण एक ही स्तम्भ पर हो सकता है, तथापि एक स्तम्भ को पृथ्क्कारी क्षमता अधिक नही होती। अतः अब दो या तीन स्तम्भो को एक श्रेणी मे रख कर पृथक्करण किया जाने लगा है। पार्ट्रिज एव ब्रिम्ले (९२) ने ८ मिलीमीटर से लेकर ३ इच व्यास वाले स्तम्भों तक की श्रेणी की व्यवस्था करने की योजना बतायी है। इसमें पहले सबसे बडा स्तम्भ रखते है, उसके बाद उसकी तिहाई क्षमता वाला स्तम्भ लगाते है, इसके बाद तिहाई क्षमता वाले स्तम्भो को ही लगाया जाता है। इसका लाभ यह है कि साधारण रूप से मिश्रण की किसी भी मात्रा को लिया जा सकता है और एक ही श्रेणी (क्रम) में लगे स्तम्भो पर उसके अवयवो को पृथक् किया जा सकता है। अनेक स्तम्भो के उपयोग मे एक लाभ यह भी है कि उसकी पृथक्कारी क्षमता अधिक होती है। विलयशील की पट्टी का अग्रभाग स्तम्भ में धँसते-धँसते हलका पडता जाता है और उसकी सतह भी पहले की तरह नही रहती। स्तम्भ का थोडा लम्बा होना भी आवश्यक है जिससे विस्थापन पूर्ण रूप से हो सके। एक बार जब यह हो जाता है तो स्तम्भ का निष्कासित दूसरे

1. Analar

छोटे स्तम्भ में डाला जा सकता है जिसमें अग्रभाग फिर से स्पष्ट बन जाता है। तीसरे स्तम्भ में हालत और अधिक सुधर जाती है और पृथक्करण पहले स्तम्भ की अपेक्षा काफ़ी स्पष्ट रूप से होता है।

इस प्रकार छोटा स्तम्भ "अग्रभाग-सीधा करने" का कार्य करता है। सरल पृथक्करण के लिए केवल दो स्तम्भों का भी उपयोग किया जा सकता है, यदि पहले स्तम्भ मे विलयशील का बिगड़ा भाग दूसरे स्तम्भ की अग्रभाग सीधा करने की क्षमता से ठीक हो सके। ऐसी दशा में तीसरे स्तम्भ की आवश्यकता नही पडती। दोनों स्तम्भो की क्षमता का अनुपात १० : १ हो सकता है। यदि पृथक् किये जाने वाले मिश्रण की मात्रा विभिन्न प्रयोगों मे विभिन्न होती है तो स्तम्भों का दूसरा जोड़ा बना लेना अच्छा होता है; इसका लाभ स्पष्ट ही है। अनेक स्तम्भों की प्रक्रिया के वर्णन के पहले प्रयोग की योजना के बारे में कई बातों पर विचार करना आवश्यक है।

नमूने की मात्रा

अपने विचारों को सुलझाने के लिए हम यह मान लेंगे कि स्तम्भ सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के हैं और पृथक् होने वाला मिश्रण अमीनो-अम्लों एवं भस्मों का है। तीनों स्तम्भों में सबसे बड़े स्तम्भ पर लगाये जाने वाले मिश्रण की मात्रा उतनी होनी चाहिए कि स्तम्भ का तिहाई अथवा आधा भाग संतृप्त हो सके। साधारण रूप से अवशोषित होने वाले पदार्थ की पट्टी को देखा जा सकता है, तथापि सम्पूर्ण धनायनों की मात्रा का आरम्भ में अन्दाज़ कर लेना अच्छा होता है, क्योंकि इससे स्तम्भों का सही आकार ज्ञात किया जा सकता है। मिश्रण के विलयन का PH अधिक अम्लीय नही होना चाहिए। बहुत अधिक अम्लीय PH के मानो पर रेज़िन की अवशोषण-क्षमता शून्य होती है, अम्ल के कम होने पर यह बढ़ती जाती है। लगभग ३ PH पर यह लगभग ५ मिलीमोल प्रति ग्राम शुष्क रेज़िन होती है, इससे कम PH पर भी अवशोषण-क्षमता यही रहती है। अतः यदि विलयन का PH तीन से कम है, या विलयन मे ऐसे लवण हैं जिनके धनायन अवशोषित होने पर ३ से कम PH बनाते है, तो स्तम्भ की वास्तविक क्षमता कम हो जाती है और स्तम्भ मे अवशोषित विलयशील युक्त रेजिन का अनुपात बढ़ जाता है। लगभग ३ PH पर यह प्रभाव अधिक गम्भीर नही होता, पर २ PH पर स्तम्भ मे अवशोषित रेज़िन का बढ़ा हुआ अनुपात ऐसी रेज़िन कम छोड़ता जिससे नीचे बहने वाले-

द्रव का विस्थापन पूर्ण रूप से हो सके; दूसरे शब्दों में स्तम्भ की पृथक्कारी क्षमता जाती रहती है। इस प्रभाव को कम करने के लिए स्तम्भ मे लगाये गये द्रव का सांद्रण कम किया जा सकता है, पर बहुत तनु विलयनो से भी परेशानी होती है, अतः लवण रहित करने वाली[1] विधि का उपयोग करना पड़ता है।

यदि पृथक् किये जाने वाले मिश्रण मे लवणों की ठीक मात्रा ज्ञात न हो तो थोडे विलयन को लेकर उसी रेजिन के एक छोटे स्तम्भ मे चलाना चाहिए और बहिरागामी का अनुमापन कर लेना चाहिए।

विस्थापी विलयन का सान्द्रण

स्तम्भों से प्रयोग करते समय यह बात ध्यान मे रखना आवश्यक है कि स्तम्भ स्वयमेव छनने की भांति काम करते हैं। विलयन मे से जो भी पादर्थ बाहर निकलता है वह स्तम्भ में भरे द्रव पर जमा होने लगता है। यदि यह द्रव्य थोड़ा-सा भी जम जाये तो स्तम्भ की कार्यवाही खराब हो जाती है अथवा द्रव का बहना बिलकुल रुक जाता है। इस कारण पृथक किये जाने वाले पदार्थ में आलम्बित द्रव्य बिलकुल नहीं होना चाहिए, उसमे ऐसे द्रव्य भी नही होने चाहिए जो PH के परिवर्त्तनो से एव विस्थापन-विधि मे सांद्रण के कारण अवक्षेपित हो सके। साद्रण के कारण अमीनो-अम्लो से ही परेशानी हो सकती है। उदाहरणतया, साधारण ताप पर ऐस्पार्टिक अम्ल केवल ०·०६ मोलर विलेय है; टायरोसीन एव सिस्टीन की विलेयता तो और भी कम है।

सिस्टीन को पृथक् करने की सबसे अच्छी विधि यह है कि विलयन को सुगमतम अधिकाधिक साद्रण पर रखा रहने दिया जाये और उसको बाद मे छान लिया जाये। टायरोसीन को सबसे अच्छी तरह फिनाइल ऐलानीन द्वारा पृथक् किया जा सकता है, अथवा पार्ट्रिज (९३) द्वारा वर्णित विधि से पूर्व प्रतिक्रिया किये हुए काठ कोयले पर उसे अलग किया जा सकता है। सक्रिय काठकोयले (B D.H.) की जब ५ प्रतिशत जलीय ऐसीटिक अम्ल से प्रतिक्रिया की जाती है तो वह अमीनो-अम्लों के विलयन मे से दो अमीनो-अम्लो (गंधित)[2] को सोख लेता है। यह पृथक्करण काफ़ी तीव्र हो सकता है, यदि उनकी मात्राओं को ठीक तरह से व्यवस्थित कर लिया

1. Desalting 2 Aromatic

जाये। काठ-कोयले से प्रक्रिया करने का एक लाभ यह भी है कि इस विधि द्वारा अमार्जित[1] जल-विश्लेषित के रग साफ हो जाते है, किन्तु यह नही भूलना चाहिए कि इस विधि से अन्य गधित पदार्थ अथवा शर्कराएँ भी निकल सकती है, यदि वे जल-विश्लेषित[2] में है। सिस्टीन अथवा टायरोसीन की सूक्ष्म मात्राएँ स्तम्भ की कार्यवाही को खराब नही करती यदि वे काफी मात्रा मे है।

बाकी बचने वाले अमीनो-अम्लों मे, ऐस्पार्टिक अम्ल का ऐसे साद्रण पर विस्थापन हो सकता है जो उसकी विलेयता से कुछ अधिक हो, क्योकि यह स्तम्भ मे से अति संतृप्त[3] दशा में निकलता है। जब ऐसा जानकर किया जाता है तो इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जब तक ऐस्पार्टिक अम्ल स्तम्भ मे है तो कही कुछ समय के लिए प्रवाह रुक न जाये; अन्यथा अवक्षेपण हो जाता है। सबसे कम विलेय अमीनो-अम्लो में दूसरा नम्बर ग्लूटामिक अम्ल का है। इसके ०.१२ मोलर विलयन को स्तम्भ मे से चलाना चाहिए। यदि प्रयोग के ताप को बढ़ा दिया जाये, तो अधिक साद्रण वाले विलयनों को लिया जा सकता है। किन्तु इससे लाभ सीमित होता है, क्योकि ल्युसीन अधिक विलेय नही है और ताप बढाने पर उसकी विलेयता अधिक नही बढती।

जो रेज़िन तीव्र अम्लीय अथवा तीव्र भास्मिक होती है और एक कार्य करने वाली भी होती है, उनमे से निकले बहिरागामी में विलयशील का वही सांद्रण होता है जो विस्थापी विलयन का होता हे। प्रोटीन के जल-विश्लेषित के लिए उपर्युक्त सांद्रण ०.०७५ नार्मल है; यही सांद्रण क्रमिक कागज-क्रोमैटोग्राम के लिए भी उपयुक्त है जिससे यह निर्धारित किया जाता है कि पृथक् हुए विलयशीलो का क्रम वही है जो बहिरागामी के अशो का होता है।

जब पृथक् किये जाने वाले विलयशीलों की मात्रा ज्ञात होती है और विस्थापी द्रव के सांद्रण का निश्चय कर लिया जाता है तो एकत्रित किये जाने वाले बहिरागामी के अशों का पूर्ण आयतन मालूम हो जाता है। उदाहरणतया, सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के १ इंच व्यास वाले स्तम्भ को लीजिए। इस स्तम्भ की क्षमता लगभग १६० मिलीमोल[4] है। यदि विलयशील केवल आधे स्तम्भ में ही आते है और

1. Crude 2. Hydrolysate 3. Supersaturated
4. Milli moles

विस्थापी विलयन का सांद्रण ०.०७५ नार्मल है तो बहिरागामी के कुल अश, जिनमे विस्थापी विलयशील के अतिरिक्त अन्य सब विलयशील होते है, लगभग एक लिटर के होगे। इसको सरलता पूर्वक २० मिलीलीटर के ५० अशो मे बॉटा जा सकता है। यह सख्या लगभग २० विलयशीलों के लिए पर्याप्त है, क्योंकि लगभग इतने ही अमीनो-अम्ल प्रोटीन के जल-विश्लेषित मे पाये जाते है। यदि विलयशील कम सख्या मे हो तो अशो की सख्या को भी घटाया जा सकता है। अधिक अशों को एकत्र करने मे कोई विशेष लाभ नही होता—यदि एक विलयशील दो या तीन अशो मे निकलता है तो अश की मात्रा कम निर्धारित की गयी है।

विलयनों का साफ़ करना

तैयार किये हुए आलम्बित द्रव्य रहित मिश्रण को स्तम्भ पर सीधे ही लगाया जा सकता है। जल-विश्लेषितो को काठ कोयले से प्रतिक्रिया करके और छान करके साफ़ करना चाहिए। जीवो से निकले विलयनो को साफ़ करने मे कुछ कठिनाई होती है और प्रत्येक विलयन के लिए विभिन्न विधि का प्रयोग होता है। हस्तक्षेप करने वाले पदार्थो की पूर्ण सफाई सदैव आवश्यक नही होती। इसके दो उदाहरण दिये जा रहे है। पहला उदाहरण चुकदर (९४) के नाइट्रोजन युक्त पदार्थो से ग्लूटामीन के पृथक्करण से संबंधित है। चुकदर को दबाकर रस निकाला जाता है। उसके बाद उसको जमा कर उसके टुकड़े कर लिये जाते हैं; इन पर भास्मिक लेड ऐसीटेट की कम से कम मात्रा डाली जाती है। इससे साफ़ नारंगी रग का विलयन निकलता है। विलयन में थोड़ा सीसा होता है; अतः इसे तीन स्तम्भो की व्यवस्था मे चलाने के पहले एक अलग जुड़े स्तम्भ मे चला लिया जाता है। विस्थापी द्रव अमोनिया होता है। इसको साधारण रूप से चलाया गया; सीसा स्तम्भ मे तेज़ी से चिपक जाता है और अमोनिया उसके ऊपर बहती जाती है। बाद मे इस स्तम्भ को अलग करके उसमे से सीसा निकाल लिया गया।

दूसरा उदाहरण ताजी हैडक मासपेशी[1] (९५) के नाइट्रोजनयुक्त सार के प्रभाजन[2] से सबधित है। मछली की उभरी मासपेशियो को निकाल कर उनके टुकड़े कर लिये गये। परम[3] ऐलकोहल से उसका सार निकाला गया, जब तक

1. Haddock muscle   2. Fraction action   3. Absolute

एलकोहल की सार मे मात्रा ८० प्रतिशत नही हो गयी। इस विलयन को अच्छी प्रकार हिला कर रात भर रखा रहने दिया गया। तत्पश्चात् उसे ६०° पर पद्रह मिनट तक गरम किया गया और उसे गरम-गरम छान लिया गया। इस द्रव को ०° पर रखा रहने दिया गया और बाद मे केलासित द्रव को छान लिया गया। इससे जो साफ द्रव बचा वह लगभग ९ लिटर था और इसमे ५०-६० प्रतिशत ऐलकोहल था। इसी द्रव का प्रभाजन करना था।

इसमे कार्बनिक भस्मे, अमीनो-अम्ल और लाइपिड[1] द्रव्यो की काफी मात्रा थी; तथा कुछ प्रोटीनों, म्युक्वायडों[2] की भी सूक्ष्म मात्राएँ थी। इसमें अकार्बनिक लवण भी काफ़ी मात्रा मे थे और इनके कारण अधिक शुद्धीकरण आवश्यक था। यह शुद्धीकरण इस प्रकार किया गया—पहले द्रव को दो इच व्यास वाले स्तम्भ में से चलाया गया; स्तम्भ में एक दूसरे से जुडी हुई सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन की रेज़िन (१५–३० मेश प्रति इंच वाले दानो की) थी। इस रेजिन को चालू करने के लिए हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का प्रयोग किया और इसे आसुत जल से धो लिया गया। सबसे बाद मे स्तम्भ को ६० प्रतिशत ऐलकोहल से धोया गया। अब विलयन के ९ लिटर इस स्तम्भ में से चलाये गये। इसमे भस्म और अमीनो-अम्ल तो स्तम्भ में आ गये;अधिकाश लाइपिड द्रव्य तो बाहर निकल गया और बाकी बचे लाइपिड द्रव्य को ६० प्रतिशत ऐलकोहल से धोकर बाहर निकाल दिया गया। ऐलकोहल से स्तम्भ को तब तक धोया गया जब तक स्तम्भ मे से चर्बी न निकल गयी। इसकी परख बहिरागामी के द्रव को उडा कर की गयी। इसके बाद स्तम्भ को आसुत जल से धोया गया और साधारण रूप से विस्थापन प्रक्रिया की गयी। इससे पदार्थ शुद्धीकरण स्तम्भ में से निकलकर पृथक्करण स्तम्भ पर आ गये।

शुद्धीकरण के इस उदाहरण मे एक ऐसी बात है जिसको आयनविनिमय स्तम्भो से कार्य करते समय ध्यान में रखना चाहिए। जहाँ ऐसे विलयनों के साथ प्रयोग किये जाते है जिनमे घुली हुई गैसे हो, तो गैसो को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे स्तम्भों में से बाहर निकलने वाले विलयन मे गैसे घुली हुई न हों। यदि भरे हुए स्तम्भ में हवा के बुलबुले आ जाये तो स्तम्भ की कार्य-क्षमता में तो अधिक अंतर नही पड़ता, पर स्तम्भ में द्रव-प्रवाह की समगति पर काफी

1. Lipid 2. Mucoids

प्रभाव पड़ता है। यदि बुलबुले बडे हो तो स्तम्भ टूट जाता है और इससे द्रव-प्रवाह बिलकुल बद हो सकता है। यदि ऐसा हो जाये तो स्तम्भ मे से द्रव्य को निकालने की विधि यह है कि उसकी रेजिन को खूब चला दिया जाये जिससे गैस बाहर निकल जाये। ऐसा करने पर पृथक्करण दुबारा करना पडता है।

ऐलकोहल विलयन से जलीय विलयन मे परिवर्तन अथवा जलीय विलयन से ऐलकोहलीय विलयन मे परिवर्तन करते समय ध्यान देना चाहिए। जल की अपेक्षा ऐलकोहल में वायु काफी विलेय है; अतः जब जलीय ऐलकोहल के विलयन को जल से तनु किया जाता है तो वायु निकलती है। इस परेशानी से बचने के लिए परिवर्तन करते समय विलयनो को एक या दो मिनट के लिए निर्वात मे रखना चाहिए जिससे उनकी गैस निकल जाये। जिन विलयनो को ठडे स्थान पर देर तक रखा जाता है उनको स्तम्भ मे लगाने के पहले गैस-रहित करना आवश्यक है। जब भास्मिक स्तम्भो का प्रयोग किया जाता है, तो कार्बन डाइआक्साइड से मिलावट को रोकना चाहिए, इसका रोकना कम कठिन है। चालू करने वाले विलयन को पहले बतायी विधि द्वारा कार्बन डाइआक्साइड से रहित कर लेना चाहिए। आसुत जल को भी गरम करके ठडा करना आवश्यक है। कार्बन डाइआक्साइड के सूक्ष्म अश भास्मिक रेजिन द्वारा अवशोषित कर लिये जाते है। विस्थापन के समय इनका सांद्रण बढ जाता है और ये गैस की विलेयता से काफ़ी बढ़ जाते हैं।

चित्र २० मे तीन स्तम्भो की समुचित व्यवस्था दिखायी गयी है।

अनेक स्तम्भों की कार्यवाही

स्तम्भो को उनकी माप के अनुसार और व्यवस्था की सुगमता के आधार पर एक के बाद एक अथवा ऊपर नीचे करके लगाया जा सकता है। विस्थापी द्रव के पात्र को सबसे बड़े स्तम्भ के प्रवेश-सिरे से यू-नली द्वारा जोड़ना चाहिए जिससे यू-नली का सबसे निचला भाग सबसे छोटे स्तम्भ के निचले भाग से थोड़ा नीचे रहे। ऐसा करने से दुर्घटनावश स्तम्भ सूख नही पाते। जब स्तम्भ को स्वत.चाली[1] अश-एकत्रक[2] से जोड़ दिया जाता है तब भी ऐसा करने पर सुगमता रहती है; क्योकि स्तम्भ मे द्रव बिना ध्यान दिये ही अपने आप बहता रहता है। विस्थापी पात्र

1. Automatic 2. Fraction-collector

में इतना द्रव भर दिया जाता है कि स्तम्भ सूखने न पाये और वह संतृप्त हो जाये। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अंश-एकत्रक मे अंशो का पूरा आयतन समा सके।
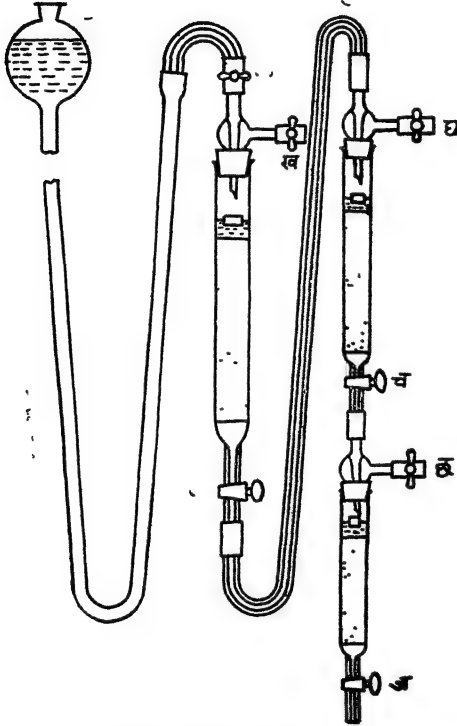
चित्र २०—अनेक स्तम्भों के लिए उपयुक्त व्यवस्था

मिश्रित विलयशीलो के विलयन को स्तम्भ मे लगाने के पहले इन बातो पर ध्यान देना चाहिए—स्तम्भ धुला हुआ और चालू अवस्था मे हो, तथा सारी रोधनियाँ[1] और पेंचदार क्लिप बद हो। पहले, बड़े स्तम्भ में रेजिन के ऊपर द्रव की

1. Stopcorks

सतह ठीक की जाती है। पात्र और यू-नली को, जिसमे विलयन पहले ही भर दिया गया हो, (क) स्थान पर लगाया जाता है और पेचदार क्लिप को (क) पर से खोल दिया जाता है। ऐसा करने पर द्रव की थोडी मात्रा बडे स्तम्भ मे टपकने लगेगी, उसका टपकना तब बद हो जायेगा जब इस स्तम्भ के ऊपर वायु का दाब पात्र मे भरे द्रव के दबाव से कुछ अधिक हो जाये। जब थोडी मात्रा मे द्रव लगाना हो तो (क) से विच्छेदन करने मे सुगमता रहती है। इस दशा मे यू-नली और द्रव-पात्र के स्थान पर पृथक्कारी कीप का प्रयोग अधिक सुगम होता है।

जब बढ़ा हुआ दाब बडे स्तम्भ मे समा जाता है तो रोधनी (ग) को खोला जा सकता है। ऐसा करने पर थोडा द्रव बीच वाले स्तम्भ मे दौड़ जायेगा क्योंकि बड़े स्तम्भ मे दाब अधिक है। इसी प्रक्रिया को रोधनी (च) से भी दुहराया जाता है और अत मे रोधनी (ज) को खोल दिया जाता है जिससे द्रव-प्रवाह आरंभ हो जाता है। रोधनी और पेंचदार क्लिपो को इसी क्रम मे सावधानी से चलाना चाहिए, क्योंकि स्तम्भ पर वातावरण के दाब और ताप का प्रभाव हो सकता है; यदि खिचाव के कारण कही द्रव पीछे के स्तम्भ मे बहने लगे तो स्तम्भ के नीचे लगी शीशा-ऊन की गद्दी उछलकर अलग हो सकती है। यदि कही ऐसा हो गया तो स्तम्भ को दुबारा भरना पडता है। इसी कारण से द्रव-सतहो का ठीक निर्धारण और उनकी नियम-पूर्वक कार्यवाही अति आवश्यक है। आरभ से गतिविधि इस प्रकार है—पहले पेचदार क्लिप (क) को खोलिए जिससे द्रव नीचे टपके। तत्पश्चात् उसे बद कर दीजिए। ऐसा करने पर प्रवाह धीरे-धीरे कम होकर रुक जायेगा। इस दशा मे सारे स्तम्भ कुछ निम्न दाब पर होते है। तब पेचदार क्लिप (ख) को खोला जाता है और द्रव को फिर टपकने दिया जाता है जिससे बड़े स्तम्भ मे द्रव की सतह उपयुक्त उँचान तक आ जाये। तत्पश्चात् रोधनी (ग) को बद किया जाता है, फिर पेचदार क्लिप (ख) को बद किया जाता है और पेचदार क्लिप (क) को खोल दिया जाता है। अब वडे स्तम्भ मे इतना दाब हो जायेगा जिससे उसकी कार्यवाही चल सके। अब सतह बराबर करने वाली प्रक्रिया को बीच वाले स्तम्भ मे पेचदार क्लिप (घ) को खोलकर लगाया जाता है; उसे खुला रहने दिया जाता है, जब तक द्रव ठीक सतह पर न आ जाये; तत्पश्चात् रोधनी (च) को बद कर दिया जाता है, पेचदार क्लिप (घ) को बद कर दिया जाता है और रोधनी (ग) को खोल दिया जाता है। इससे बीच वाला स्तम्भ कार्यवाही दाब पर आ जाता है। छोटे स्तम्भ पर भी इसी विधि को दुहराया जाता है।

कभी-कभी प्रयोग चलते समय द्रव की सतहों को ठीक करना आवश्यक होता है, अतः सारे प्रयोग के लिए किसी क्रम को बना लेना वांछनीय है।

जब बड़े स्तम्भ के ऊपर लगे शीशे के पात्र मे से अथवा यू-नली और द्रव-पात्र में से मिश्रित विलयशीलो के विलयन का अंतिम भाग बह जाये तो स्तम्भ पर थोड़ा आसुत जल चलाना ठीक होता है, जिससे परख-द्रव का अवशिष्ट भाग स्तम्भ पर आ जाये। जैसे ही आसुत द्रव शीशे के पात्र मे समाप्त हो, वैसे ही विस्थापी द्रव का लगाना ठीक होता है। सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन के साथ विस्थापी द्रव साधारणतया सोडियम हाइड्राक्साइड का विलयन होता है, साधारण ताप पर अमीनो-अम्लो के पृथक्करण के लिए ०.०७५ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड का उपयोग करना चाहिए, उसका साद्रण कम भी हो सकता है, जैसा पहले बताया जा चुका है। बहिरागामी का एकत्रण तब तक आवश्यक नही जब तक वह अम्लीय नही होता या स्तम्भ पर दिखाई देने वाली पट्टी बिलकुल नीचे की ओर खिसक नही आती। पहले के अश वस्तुतः शुद्ध जल के रूप मे होते है।

द्रव के प्रवाह की गति ऐसी होनी चाहिए कि बढने वाला अग्रभाग स्तम्भ में ५ सेमी० प्रति घटे की रफ्तार से नीचे बढे। यदि प्रवाह की गति को इससे भी धीमा कर दिया जाये तो पृथक्करण अधिक अच्छा होता है, किन्तु प्रयोग की अवधि काफी अधिक हो जाती है। प्रवाह की गति को नियत्रित करने का एक अच्छा तरीका यह है कि लगभग ४ सेमी० लंबी मोटी दीवार वाली केश-नलिका छोटे स्तम्भ के निचले सिरे पर लगा दी जाये। केश-नलिका मे स्टेनलेस स्टील का एक तार रख दिया जाता है जिसका व्यास केश-नलिका के व्यास से कुछ कम होता है। यदि इस तार का अधिक भाग केश-नलिका मे हो तो गति धीमी हो जाती है और यदि कम भाग अदर रहे तो गति तीव्र हो जाती है; इस प्रकार गति का नियत्रण किया जा सकता है। पात्र मे भरे द्रव की उँचान को भी घटा-वढ़ाकर प्रवाह की गति दुरुस्त की जा सकती है। पर यह विधि ठीक नही है क्योकि क्षार के अवशोषण से रेज़िन सिकुड़ जाती है। फलत स्तम्भ मे प्रवाह का अवरोध कम हो जाता है जिससे कभी-कभी प्रयोग के अत मे आरभ की अपेक्षा प्रवाह-गति दुगुनी हो जाती है।

अंश-एकत्रक निम्नलिखित तीन सिद्धातो मे से किसी एक पर काम करते हैं—(क) बराबर आयतन, (ख) मध्यान्तर का निश्चित समय, अथवा (ग) बूंदों का गिनना। यदि मध्यान्तर का समय निश्चित रखा गया है तो प्रवाह-गति में

अधिक वृद्धि होने पर अश-एकत्रक भर सकता है और द्रव बाहर बहना आरंभ कर सकता है।

जब अशो मे सोडियम आने लगे तो द्रव के प्रवाह को फौरन बंद कर देना चाहिए। सोडियम की जाँच के लिए प्लैटिनम तार से ज्वाला पर परख इस मतलब के लिए पर्याप्त है।

अंशों का लक्षण-निर्धारण

अशो के एकत्र करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि प्रत्येक अंश की रचना ज्ञात की जाये। रचना जानने के लिए प्रत्येक अश मे से एक-एक बूँद ली जाती है और उसको क्रमिक कागज[1] क्रोमैटोग्राम पर लगाया जाता है। ऐसा करने के पहले प्रत्येक श्रेणी के अत के कुछ अशों की एक-एक बूँद लेना और उनको जाँचना लाभ-दायक होता है। इनको छनने कागज के एक छोटे ताव पर लगाया जाता है; तत्पश्चात् उसको सुखाकर उस पर साधारण विधि से निनहाइड्रिन अथवा दूसरे उपयुक्त प्रतिकर्मक[2] की फुहार छोडी जाती है। ऐसा करने पर सब आवश्यक अशों को अलग कर देने मे सुविधा होती है। क्रमिक क्रोमैटोग्राम के दो प्रयोग करने चाहिए जिससे दो विलायकों का प्रयोग हो सके। अमीनो-अम्लो के लिए फीनोल-ऐसीटिक अम्ल और ब्युटेनाल-ऐसीटिक अम्ल लिये जा सकते है। यदि प्रोटीन के जल-विश्लेषित अथवा प्रोटीन के मिश्रण लिये गये है, तो ज्ञात होगा कि निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया के फलस्वरूप धब्बो के क्रम में कुछ स्थान रिक्त रह जाते है। उदाहरणतया, अमोनिया की उपस्थिति में लाइसीन और आर्जीनीन के बीच मे अमीनो-अम्लो के क्रम मे एक स्थान रिक्त रहता है। जब विलयशीलों वाले अशो के क्रम की सीमाओं को जानना हो तो इन रिक्त स्थानों की सभावनाओ को भूलना नही चाहिए। जब क्रमिक कागज क्रोमैटोग्रामो द्वारा अशों का पूर्ण क्रम ज्ञात हो जाता है तो यह निश्चित किया जा सकता है कि विलयशीलो को पृथक् करने के लिए किन अशों को मिलाया जाये, किन अशो को फेंक दिया जाये और किन अशो को दुबारा पृथक् किया जाये।

1. Sequential paper 2. Reagent

विलयशीलों के विस्थापन का क्रम

यदि तीन अम्लीय रेजिन, जैसे सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन, अथवा तीव्र भास्मिक रेजिन, जैसे डावेक्स २, को लिया जाये तो विस्थापन का क्रम उनके pK मानो द्वारा ज्ञात हो सकता है, इसमे सयोजकता अथवा "वैन डर वाल" के बलों[1] से कुछ प्रभाव अवश्य पडता है। पार्ट्रिज एवं ब्रिम्ले (९२) ने एक सारणी बनायी है जिसमें उन्होने प्रयोगो से प्राप्त क्रम और pK मानो से ज्ञात क्रम की तुलना की है। यह सारणी दो रेजिनो के लिए है—सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन और तीव्र भास्मिक डावेक्स २।

(सारणी अगले पृष्ठ पर देखे)

1. "Vander Waals" forces

सारणी ३

पालीस्टीरीन			डावेक्स २		
ऐस्पार्टिक अम्ल }	pk_1	१.८८	लाइसीन	pk_3	१०.५३
हाइड्राक्सीप्रोलीन }	pk_1	१.९२	प्रोलीन	pk_2	१०.६०
थ्रियोनीन	—	—	बीटाऐलानीन	pk_2	१०.१९
सीरीन }	pk_1	२.२१	ऐलानीन	pk_2	९.६९
ग्लूटामिक अम्ल }	pk_1	२.१९	वैलीन	pk_2	९.६२
प्रोलीन }	pk_1	१.९९	ल्युसीन }	pk_2	९ ६०
ग्लाइसीन }	pk_1	२ ३४	ग्लाइसीन }	pk_2	९.६०
ऐलानीन }	pk_1	२.३४	कार्नोसीन }	pk_3	९.५१
वैलीन }	pk_1	२.३२	थ्रियोनीन }	—	—
मेथायोनीन }	pk_1	२.३८	सीरीन }	pk_2	९ १५
ल्युसीन }	pk_1	२.३६	हिस्टीडीन	pk_3	९.१७
सिस्टीन	pk_2	२.२६	मेथायोनीन	pk_2	९ २१
क्रीएटीन	pk_1	३ ०*	मेथिल हिस्टीडीन	pk_3	८.८५
फिनाइल ऐलालीन	pk_1	१.८३	सिस्टीन	pk_3	७.८५
बीटा-β-ऐलानीन	pk_1	३.६०	टायरोसीन	pk_2	९ ११
ट्राइमेथिल अमीन आक्साइड	pk	४.५*	ऐसीटिक अम्ल	pk	४.७५
क्रीएटीनीन	pk	४ ८*	ग्लूटामिक अम्ल	pk_2	४.२५
हिस्टीडीन	pk_2	६.०	ऐस्पार्टिक अम्ल	pk_2	३.६५
मेथिलहिस्टीडीन	pk_2	६.४८	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	—	—
कार्नोसीन	pk_2	६.८३			
ऐन्सीरीन	pk_2	७.४			
हाइड्राक्सीलाइसीन	—	—			
लाइसीन	pk_2	८.९५			
अमोनिया	pk	९.२७			
आर्जीनीन	pk_2	९.०४			
मेथिल अमीन	pk	१०.६४			

*गणित
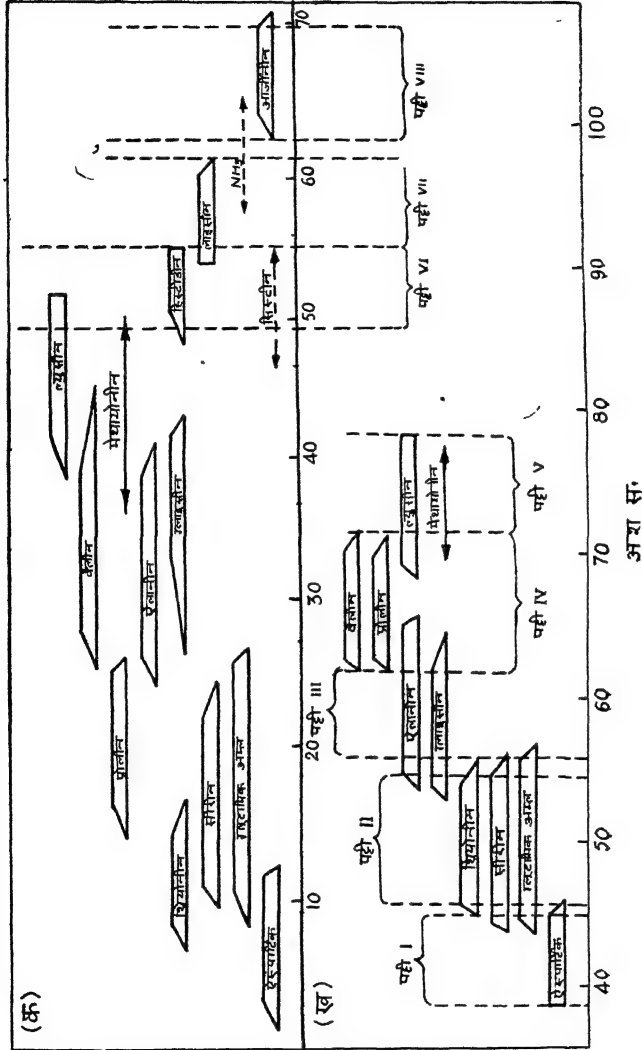
चित्र २१ 'क', 'ख'—अमीनो-अम्लों के पृथक्करण को दिखाते हुए क्रमिक कागज-क्रोमैटोग्रामों के काल्पनिक चित्र (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ९२, पार्ट्रिज एवं ब्रिम्ले के आधार पर)

चित्र २१ (क) एव (ख) मे क्रमिक कागज़ क्रोमैटोग्राम प्रदर्शित किये गये है; ये यीस्ट प्रोटीन के जल-विश्लेषित द्रव्य के, जिसमे से टायरोसीन और फ़िनाइल ऐलानीन पहले ही पृथक् कर लिये गये थे, है। चित्र (क) उस पृथक्करण का फल है जिसमे सल्फ़ोनेटेड पालीस्टीरीन के स्तम्भ का प्रयोग हुआ था और उसमें ४.५ प्रतिशत डाइवाइनिल बेजीन की कडियाँ भी थी; इस स्तम्भ पर विस्थापन सोडियम हाइड्राक्साइड के विलयन से किया गया था। अशो के समूह बना लिये गये थे जिनसे पट्टियाँ VI, VII और VIII प्राप्त हुईं, इनमें मौजूद अमीनो-अम्लों को अलग पृथक् कर लिया गया। बाकी सब अंशो को एक मे मिला लिया गया और उनको अमोनिया विलयन द्वारा जियोकार्ब २१५ रेजिन के स्तम्भ पर विस्थापन करके पुन. पृथक् किया गया, इसका चित्र (ख) है। इस रेजिन के उपयोग से लाभ यह होता है कि अशो के दूसरे समूह मे जो अमीनो-अम्ल होते है, उनमे भास्मिक अमीनो-अम्लो के अतिरिक्त सारे अम्लों का एक सुगम समूह बन जाता है। जियोकार्ब २१५ में सल्फोनिक समूहो के अलावा फिनालिक हाइड्राक्सिल समूह भी होते है और इस कारण "वैन डर वाल" के प्रभाव भी अधिक होते है; फलतः विस्थापन के क्रम मे प्रोलीन को आगे बढना सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन रेजिन की अपेक्षा घट जाता है। फिनालिक हाइड्राक्सिल समूह सात pH से अधिक क्षारीय pH के मानो पर सक्रिय होते है और इनके कारण भास्मिक अमीनो-अम्लो का पृथक्करण अच्छा नही होता। इस रेजिन की दुहरी प्रक्रिया के कारण उसकी अवशोषण-क्षमता, क्षारीय pH के मानो से उदासीन pH मानो तक बदलती रहती है। पार्ट्रिज एव वेस्टल (९६) ने कई विलयशीलो के समताप-वक्र बनाये। विस्थापी विलयनो और विस्थापित विलयशीलो के सान्द्रणो की टिजेलियस की ग्राफीय विधि, जिसको पहले बताया जा चुका है, द्वारा गणना की गयी।

चित्र २१ में दिखायी गयी पट्टियो को जिनमे एक से अधिक अमीनो-अम्ल है, दूसरे प्रयोग द्वारा पृथक् किया जा सकता है। दूसरे प्रयोग मे तीव्र भास्मिक रेजिन के तीन स्तम्भ लिये जाते है और उनका विस्थापन हाइड्रोक्लोरिक विलयन से किया जाता है। अमीनो-अम्लो के युग्म (ल्युसीन-आइसोल्युसीन एव सीरीन-थ्रियोनीन) इस प्रयोग से भी पृथक् नही हो पाते; काफी बड़े स्तम्भो को लेने से ही उनका पृथक्करण संभव होता है। व्यवहार में, अलग हुए अशो को इसी क्रम मे दुबारा या तिबारा चलाने से लाभ होता है। ऐसा तब तक करना चाहिए जब तक पर्याप्त पृथक्करण न हो जाये। इसके बजाय दूसरी विधि यह भी हो सकती है—अशो के

पहले क्रम को तीन विभागों में बाँट लिया जाता है। उदाहरणतया, पहले मे थ्रियोनीन अधिक होती है, दूसरे मे सीरीन और तीसरे मे बिना अलग हुई मिश्रित पट्टियाँ। यदि अधिक थ्रियोनीन वाले कई अशो को एक साथ मिला लिया जाय तो एक ही प्रभाजन से काफी अच्छा पृथक्करण हो जाता है।

चित्र २२ में चुकदर एव हैडक मासपेशी के रसो के प्रभाजन प्रदर्शित किये गये है। इन दोनो रसो की सफाई का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। किन्तु इनमे से किसी की भी काठकोयले से प्रक्रिया नही की गयी जिससे गधित अमीनो-अम्ल निकल आये। चुकन्दर के रस का प्रयोग ग्लूटामीन की थोडी मात्रा को प्राप्त करने के लिए किया गया। जियोकार्ब २१५ का उपयोग किया गया और विस्थापी विलयन ०.१७ नार्मल अमोनिया का था। आर्जीनीन को निकालने की चेष्टा नही की गयी, क्योकि अभास्मिक अमीनो-अम्लो के उपयुक्त समूह और अच्छे पृथक्करण के लिए ऐसे pH का होना जरूरी है जिसमे ग्लूटामीन भी आ जाये। चालीस पौड चुकदर का रस निकाला गया और पहले वर्णित विधि द्वारा उसे लेड ऐसीटेट से साफ किया गया। स्तम्भ मे साधारण विधि से लगाकर इसका विस्थापन किया गया। दूसरे समूह के अशो का दुबारा पृथक्करण डी-ऐसीडाइट बी (D-acidite B) के स्तम्भ पर किया गया। यह हलकी ऋणायन विनिमय रेजिन होती है और विभिन्न अशो मे से ग्लूटामिक अम्लों को पृथक् कर लेती है। बहिरागामी मे तीसरे समूह के अशो को मिला दिया गया और इन सब अशों से केलासित ग्लूटामीन को निकालने का प्रयास किया गया। चौथे समूह के अशो को एक मे मिलाकर बीटाईन प्राप्त की गयी। अशो (५२, ५३ और ५४) को मिलाकर जियोकार्ब २१५ के छोटे स्तम्भ पर पृथक् किया गया। उसके फलस्वरूप जो अश प्राप्त हुए उनमे केवल गामा अमीनो ब्यूटिरिक अम्ल विद्यमान था। इन प्रयोगो द्वारा ५० ग्राम से अधिक ग्लूटामीन, लगभग ३० ग्राम बीटाईन और ३ ग्राम गामा अमीनो-ब्युटिरिक अम्ल प्राप्त किये गये। ये सब काफी शुद्ध अवस्था मे थे।

धनायन रेजिनो पर पौधो के रसो से अमीनो-अम्लो का पृथक्करण तब कठिन होता है जब काफी मात्रा मे ऐस्परागीन विद्यमान हो। ऐस्परागीन का थोडा विच्छेदन हो जाता है जिससे ऐस्पार्टिक अम्ल और अमोनिया बनते है। फलतः ऋणायन रेजिन पर इनका पृथक्करण सरल हो सकता है। ग्लूटामिन से परेशानी कम होती है।
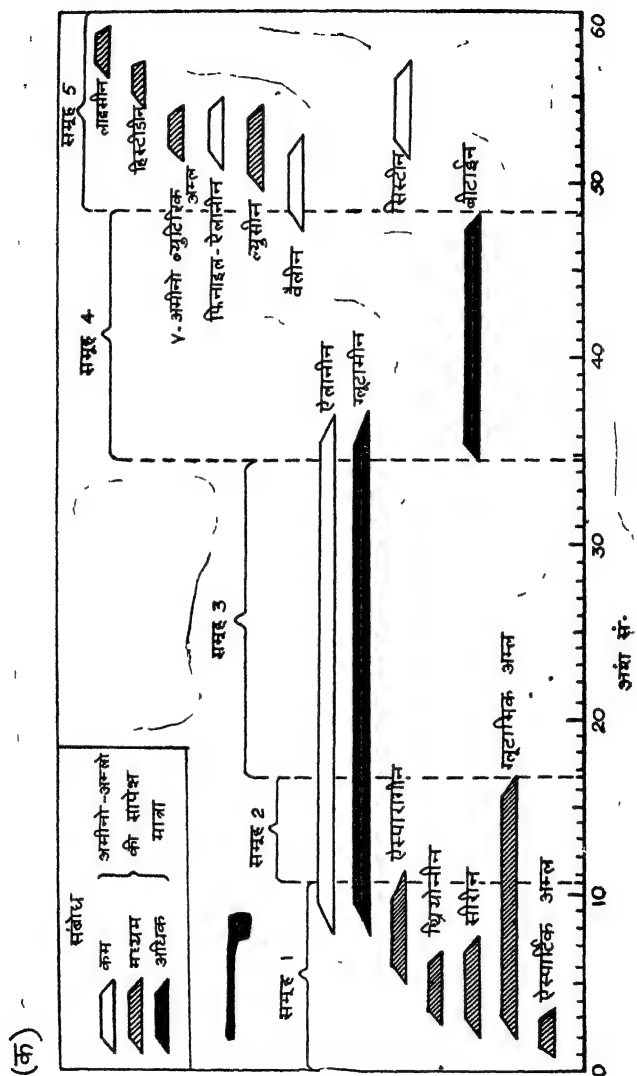
चित्र २२ 'क'—चुकन्दर के रस का प्रभाजन (देखिए — पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० ९४, वेस्टल के आधार पर)
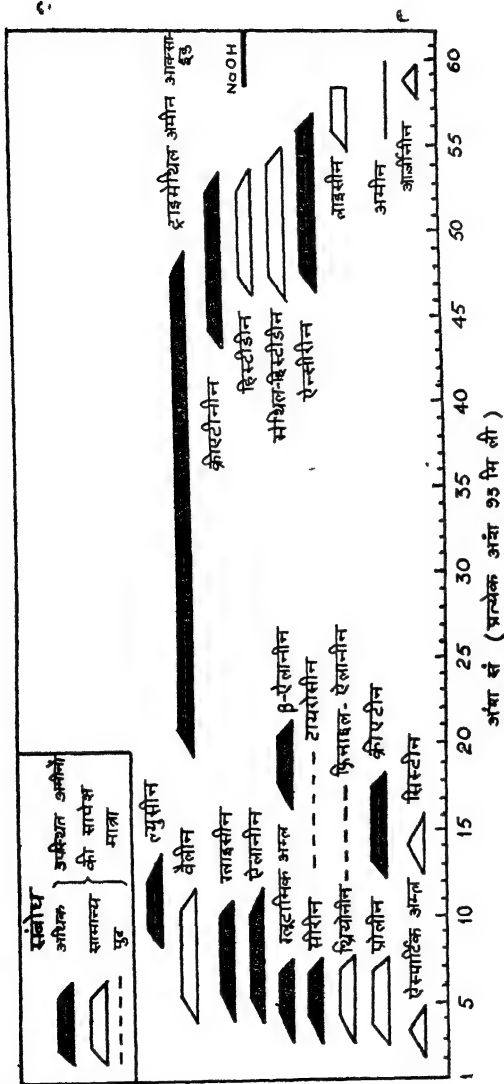
चित्र २२ 'ख'—हैडक मांसपेशी के रस का प्रभाजन (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० १५)

हैडक मासपेशी के सार में तीव्र भास्मिक द्रव्यो के होने की आशा थी। इसको साफ करने की और स्तम्भ मे लगाने की विधि का पहले ही वर्णन किया जा चुका है। विस्थापन ०.०७५ नार्मल सोडियम हाइड्राक्साइड से किया गया। क्रमिक कागज क्रोमैटोग्राम से जो फल प्राप्त हुए उनको चित्र २३ के निचले भाग में प्रदर्शित किया गया है। प्रोटीन के जल-विश्लेषित द्रव्यो मे जो अमीनो-अम्ल पाये जाते है, उनके अतिरिक्त इसमे क्रीएटीन, ऐलानीन, ट्राइमेथिल-अमीन-आक्साइड, क्रीएटीनीन
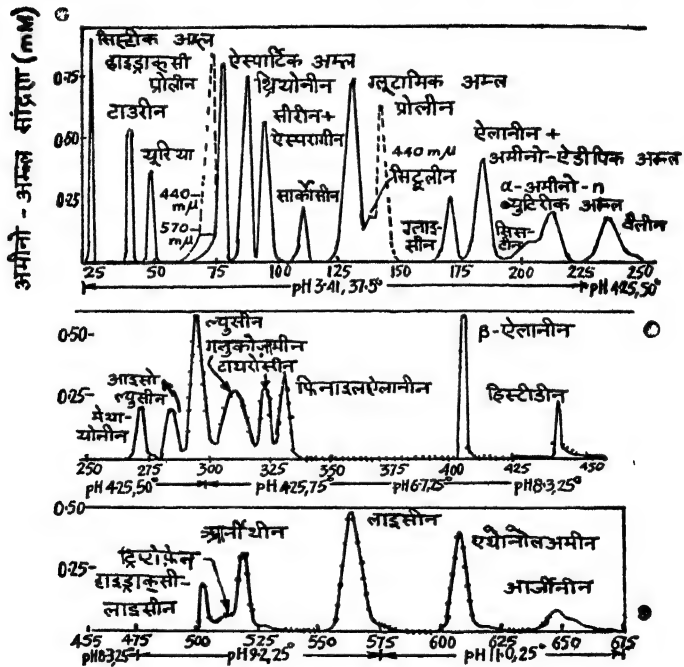
चित्र २३—निष्कासन विधि द्वारा अमीनो अम्लों का पृथक्करण (देखिए—पठनीय सामग्री - उल्लेख सं० ९७, मूर एवं स्टाइन)

मेथिल हिस्टीडीन, ऐन्सीरीन और मेथिल अमीन भी प्राप्त हुई। जिन अशों में केवल ड्राइमेथिल अमीन आक्साइड थी उनको एक मे मिला लिया गया और इस द्रव्य को उसके हाइड्रोक्लोराइड के रूप मे केलासित कर लिया गया। १०.५ ग्राम

द्रव्य प्राप्त हुआ। अश ४७-५५ को मिलाकर डावेक्स २ के तीन स्तम्भो पर दुबारा प्रभाजन किया गया। इस प्रयोग से केवल ऐन्सीरीन के अशो को एकत्र किया गया; इनसे ५ ग्राम शुद्ध ऐन्सीरीन प्राप्त हुई। अश ५६-६० मे वाष्पशील अमीने थी। इनको जेम्स, मार्टिन एव हावर्ड स्मिथ की गैस-द्रव विभाजन विधि से पहचाना गया। इसमे अधिकाशत. तो अमोनिया थी पर ५८ और ५९ अशों में मेथिल अमीन भी पाये गये।

आयन-विनिमय रेजिनों को काम मे लाकर निष्कासन विधियाँ

यदि जल से निष्कासन किया जाय तो प्रयोग मे काफी समय लगता है, क्योकि "वितरण गुणक"[1] रेजिन फेज के लिए काफी अधिक होता है, प्रतिरोधी अथवा आयनीय विलयनों (जिनका चार्ज रेजिन के समान हो) से निष्कासन सभव है। अमरीका मे मुख्यतया मूर एव स्टाइन तथा स्पेडिग और उनके साथियो ने इन निष्कासन विधियो का खूब उपयोग किया है। मूर एव स्टाइन (९७) ने अमीनो-अम्लो के लिए सोडियम प्रतिरोधों का निष्कासक की भाँति प्रयोग किया और डावेक्स ५० रेजिन का उपयोग किया। यह विधि पहले वर्णित विभाजन विधि से अच्छी सिद्ध हुई। इस विधि में प्रयोग आरभ करने मे समय अधिक लगता है, बूंद गिनने के उपयुक्त यत्र की आवश्यकता पडती है और पहले से काफी योजना भी बनानी होती है। इन कारणों से पाठको से निवेदन है कि वे इन वैज्ञानिकों का मौलिक शोध-निबंध पढे, किन्तु यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि अमीनो-अम्लो के निर्धारण के लिए सबसे अच्छी विधि यही है।. इन वैज्ञानिकों ने १०० सेमी० लबे स्तम्भ का, जिसका व्यास ०.९ सेमी० था, उपयोग किया। रेजिन २५०-५०० मेश प्रति इच वाले दानों की थी। स्तम्भधारक जेख्माइस्टर-चोलनो की भाँति का था; इसके जोड़ घिसे हुए शीशे से बने थे और इसके निचले सिरे पर सिटर्ड[1] शीशे का तनुपट था। तनुपट के नीचे वाली नली की छोटी लबाई ऊपरी स्तम्भ से थोड़ी ही सँकरी थी, जिससे बहिरागामी छोटी नली के अदर चले, १ मिलीलीटर के अशों को एकत्र किया गया। स्तम्भधारक को एक आवरण मे रख दिया जाता है, जिसमे गरम पानी भेजकर निश्चित ताप को नियत रखा जा सके। प्रत्येक प्रयोग मे कई

1. Distribution Coefficient

1. Sintered

प्रतिरोधों और कई तापो पर काम किया जाता है। प्रवाह की गति काफी धीमी होती है, लगभग ४ मिलीलीटर प्रति घंटा। इस प्रकार, सारे प्रयोग मे ५ दिन लगते है। नमूने की मात्रा कम ली जाती है। इसकी यथार्थता स्टार्च-स्तम्भों के समान रहती है अर्थात् ०.१–०.५ मिलीग्राम अमीनो-अम्लों का ३ प्रतिशत तक निर्धारण हो सकता है। तीन सबसे अधिक भास्मिक अमीनो-अम्लों के लिए यह यथार्थता और कम हो जाती है। चित्र २३ इस शोध-निबध (९७) मे से लिया गया है; इस विधि की असाधारण पृथक्कारी क्षमता इससे स्पप्ट है।

डा० स्पेडिग की प्रयोगशाला मे जो कार्य किया गया वह सरल निष्कासन विधि की अपेक्षा अधिक जटिल है। स्तम्भो मे ऐम्बरलाइट[1] आई० आर० १०० का उपयोग किया गया। यह सल्फोनेटेड फीनोल-फ़ार्मैल्डीहाइड रेजिन होती है; स्तम्भ ३०-१००×२.२ सेमी० व्यास के थे। अमोनियम हाइड्राक्साइड को विभिन्न मात्रा में मिलाकर साइट्रिक अम्ल के विभिन्न विलयन बनाये गये। यह मालूम था कि प्रयोग की परिस्थितियो मे इस विलयन के जटिल साइट्रेट यौगिक बनेगे, अतः इस विधि की प्रक्रिया स्पष्ट नही है। फैरडे सोसाइटी के वाद-विवादों में जो चित्र दिये गये है उनसे ऐसा मालूम पड़ता है कि निष्कासन के स्थान पर कभी कभी विस्थापन भी होने लगता है। इन विधियो द्वारा लैन्थेनम्, सीरियम, प्रेजीओडि-मियम, नीओडिमियम और इट्रियम धातुओ को पृथक् किया गया है।

स्वीट, रीमॉ, बोयेकेनकाम्प (९८) ने डावेक्स ५० पर क्षार-धातुओ के सिलिकेट को लेकर तनु हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा निष्कासन करके उनको पृथक् किया और उनका निर्धारण किया। आपका कहना है कि जो साधारण विश्लेषण विधियॉ है, उनकी अपेक्षा यह विधि अधिक अच्छी है।

बुश, हर्लबर्ट एव पाटर (९९) ने क्रेब्स साइट्रिक अम्ल[2] साइकिल के अम्लों का फ़ार्मिक अम्ल के विभिन्न साद्रणो द्वारा निष्कासन करके डावेक्स १ पर पृथक्-करण किया है।

टामस और उनके साथियो (१००) ने डावेक्स २ पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के सांद्रणों को बढाकर कुछ न्यूक्लीओटाइडो का निष्कासन विधि द्वारा पृथक्करण किया है।

1. Amberlite I. R. 100 2. Krebs Citric acid

प्रोटीनों का पृथक्करण

क्रोमैटोग्राफी द्वारा प्रोटीनो के पृथक्करण की सभावना बडी महत्त्वपूर्ण है। हर्स, स्टाइन एव मूर (१०१) ने निम्न अणुभार वाली दो भास्मिक प्रोटीनों के सतोषजनक निष्कासन पीक[1] प्राप्त किये; ये प्रोटीन राइबोन्यूक्लीएज[2] और लाइसोजाइम[3] थी और इनमे कार्बाक्सिल रेजिनो पर प्रतिरोधो का उपयोग किया गया था। बोर्डमैन एव पार्ट्रिज (१०२) ने इन पदार्थो का सावधानी से अध्ययन किया है और आप उदासीन प्रोटीनो को, जिनके सम-विद्युत् बिन्दुओं[4] मे केवल ०.६ pH का अतर था, पृथक् करने मे सफल भी हुए।

आयन विनिमय रेज़िनों के अधिशोषक गुण-धर्म

आयन-विनिमय रेजिनो के साधारण व्यवहार की जानकारी उनके अनुमापन वक्रो से की जा सकती है। उनके निर्धारण की विधि निम्नलिखित है। रेजिन की ज्ञात मात्रा को एक धारक मे रखा जाता है, उसमे सोडियम क्लोराइड का विलयन, जिसमे अम्ल अथवा क्षार की ज्ञात मात्रा पड़ी हो, डाला जाता है। तत्पश्चात् रेजिन को खूब हिलाया जाता है। जब सतुलन अवस्था प्राप्त हो जाती है तो विलयन का pH ज्ञात कर लिया जाता है और उसके निर्धारित आयतन का[5] अनुमापन[6] pH कर लिया जाता है। इस प्रकार से प्राप्त परीक्षण-फलों से एक वक्र बना लिया जाता है, जिससे कि एक ख़ास pH पर प्रति ग्राम शुष्क रेजिन के मिली-समतुल्य मालूम हो जाते है।

इन वक्रो को देखने से पता चलता है कि जिस pH मान पर अवशोषण सबसे अधिक होता है, वह कुछ हद तक लवण के साद्रण पर आधारित होता है। जब लवण का साद्रण बढ़ जाता है तो अम्लीय रेजिन अधिक अम्लीय pH पर अवशोषण आरभ करती है और ऋणायन अधिक क्षारीय pH पर। यह आयन-विनिमय सतुलन के सिद्धात से भी ठीक है। हेल एव राइखेनबर्ग (१०३) ने यह सिद्ध किया है कि सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन और कार्बाक्सिलिक रेज़िन द्वारा सोडियम का

1. Elution peaks
2. Ribonuclease
3. Lysozyme
4. Iso-electric points
5. Aliquot
6. Titration

अवशोषण सोडियम आयन और हाइड्रोजन आयन साद्रण पर निर्भर होता है। चित्र २४ मे कई रेजिनो के परीक्षण-फल दिखाये गये है। क्रोमैटोग्राफी के दृष्टिकोण से तीव्र अम्लीय और तीव्र भास्मिक रेजिन अधिक अच्छी होती हैं, क्योकि वे
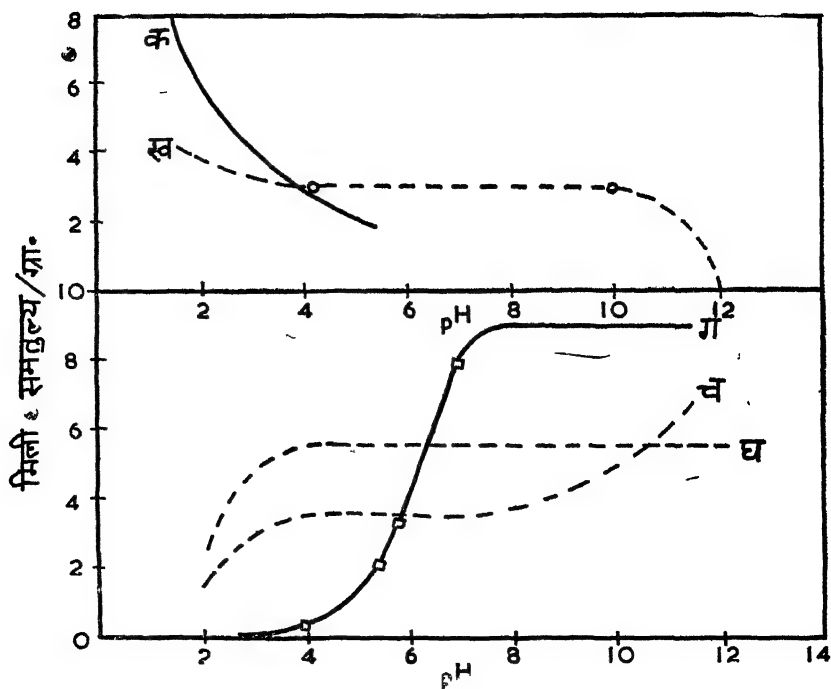
चित्र २४—हाइड्रोजन आयन सान्द्रण के साथ आयन-निविमय रेजिनों के लिए अवशोषण वक्र क—De-Acidite E ख—De-Acidite FF घ—Zeokarb 225 च—Zeokarb 215 C—carboxylic resin (0·1M.NaCl) (परमुटिट कम्पनी के डा० टी० आर० ई० क्रेसमान की कृपा से) (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०३, हेल एवं राइखेन वर्ग के आधार पर)

कमजोर रेजिन की अपेक्षा काफी विनिमय कर सकती हैं। कमज़ोर रेजिनों की प्रक्रिया धीमी होती है पर विशेष परिस्थितियों मे उनका उपयोग लाभदायक होता है, जैसे अधिक आयनीकृत विलयशीलो का कमजोर आयनीकृत विलयशीलों से पृथक्करण, और कमजोर भास्मिक रेजिन साधारण रूप से पाये जानेवाले अमीनो-अम्लों मे से केवल ऐस्पार्टिक और ग्लूटामिक अम्लो का अवशोषण करती है।

स्तम्भों को चालू करते समय जल से धोने के लिए साधारण नल के पानी को उपयुक्त स्तम्भ पर चलाकर तैयार किया जा सकता है। इस प्रकार धनायन-विनिमय रेजिन को नल के ऐसे पानी से धोया जा सकता है जो धनायन अवशोषक स्तम्भ पर से चलाया जा चुका हो।

यद्यपि यह क्रोमैटोग्राफी के क्षेत्र मे नही है, तथापि यहाँ पर यह बताना आवश्यक है कि चालकता-जल[1] सापेक्ष चालकता–०.१ से ०.५×१०–६ रेसी प्रो० ओम[2] को डी ऐसीडाइट एफ० एफ० और जियोकार्ब २२५ के बराबर मिश्रण वाली रेजिन पर नल के साधारण पानी को चलाकर प्राप्त किया जा सकता है। उलटकर धोने से रेजिनों को अलग करके चालू किया जा सकता है, क्योंकि उनके घनत्व विभिन्न होते है।

सारणी ४ मे ग्रेट ब्रिटेन मे प्राप्त कुछ रेज़िनो के बारे मे बताया गया है।

सारणी ४

रेजिन	प्रकार	दाम प्रति पौंड
ज़ियोकार्ब २१५	न्यूक्लियर, फीनोल सल्फोनिक	६।६
जियोकार्ब ३१५	न्यूक्लियर, उच्च ताप पर स्थायी	६।६
जियोकार्ब २२५	सल्फोनेटेड पालीस्टीरीन	१३।६
जियोकार्ब २१६	कार्बाक्सिलिक	६।६
डी ऐसीडाइट ई	मध्यम भास्मिक	१३।६
डी ऐसीडाइट एफ. एफ.	तीव्र भास्मिक	२६।६

1. Conductivity water
2. Recip. ohm

ज़ियोकार्ब २२५ हल्की कड़ियों से जुडी (साढ़े चार प्रतिशत) तक भी मिल सकती है; विस्थापन में अच्छे पृथक्करण के लिए इसी रेजिन को मँगाना चाहिए। प्रयोगशाला के काम के लिए इन रेजिनों के विशेष रूप से घुले रूप मिलते है । किन्तु प्रयोग के पहले उनको चालू करना आवश्यक है। जो दाम ऊपर बताये गये है, वे १-२८ पौंड तक के लिए है और जनवरी १९५२ के है।

अमरीका में अनेक प्रकार की रेजिने प्राप्य है। जिन रेजिनो के दाम ऊपर बताये गये है, उनसे ये रेजिनें बराबर दाम की बैठती है—

रेजिन	प्रकार
ऐम्बरलाइट आई० आर० १००	फ़ीनोलिक मेथिलीन सल्फ़ोनिक
डावेक्स ५०	न्यूक्लियर सल्फ़ोनिक
एम्बरलाइट आई० आर० सी० ५०	कार्बाक्सिलिक
डावेक्स २	तीव्र भास्मिक

अध्याय ७

सहायक उपकरण

इस अध्याय में मुख्यतया अंश-एकत्रको का वर्णन किया गया है। यदि क्रोमैटोग्राफ़ी में अधिक कार्य करना हो तो ये लगभग आवश्यक ही है। हाथ में पात्र पकडकर अंशों को एकत्र किया जा सकता है, किन्तु स्तम्भ में प्रवाह की गति को ठीक ठीक बताना संभव नही। फलतः, यह निर्णय करना होता है कि प्रयोग को असुविधाजनक समय में भी जारी रखा जाय, या थोड़ी देर के लिए प्रयोग को बन्द कर दिया जाय। ऐसा करने से स्तम्भ में द्रव के सम प्रवाह पर प्रभाव पड़ता है और इससे पृथक्करण ख़राब भी हो सकता है।

अब अच्छे अंश-एकत्रक उपकरणों का वर्णन किया जायगा।

बूँदों का गिनना

स्टाइन एवं मूर (१०४) ने अमीनो-अम्लों के परिमाणात्मक परिमापन के लिए अपनी विधि में एक उपकरण का उपयोग किया। जब प्रत्येक बूँद गिरती थी तो वह प्रकाश-दण्ड[1] को बीच में से काटती थी; प्रकाश-दण्ड एक फ़ोटो-सेल पर पड़ता था और यह फोटो-सेल आवेग-गणक[2] को चलाता था; आवेग-गणक अंश-एकत्रक की गति का नियत्रण करता था। अंश लगभग १ मिलीमीटर या उससे भी कम होता था। अश के आयतन का नियत होना द्रव के तल-तनाव[3] आदि पर निर्भर होता है। इन वैज्ञानिकों के प्रयोग में यह तल-तनाव बहुत उपयुक्त था, क्योकि बहिरागामी विलयन मुख्यतया नियत रचना वाले पदार्थों का प्रतिरोध-विलयन होता है, इन प्रयोगों में ताप भी नियत रहता

1. Beam of light
2. Impulse-Counter
3. Surface tension

है। इस उपकरण के पूर्ण विस्तार के लिए पाठक कृपया मौलिक शोध-निबन्ध देखें।
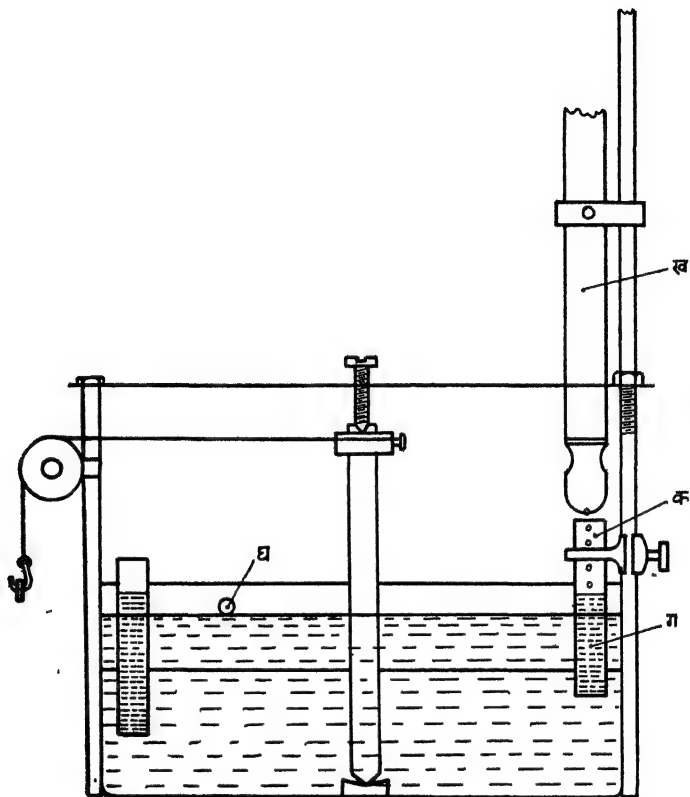
चित्र २५—फिलिप्स द्वारा निर्मित अंश-एकत्रक (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०५, फिलिप्स से परिवर्धित)

बूँदो के गिनने की विधि तभी विश्वसनीय होती है जब एक मिलीमीटर या उससे भी कम आयतन के अश एकत्र किये जा रहे हों।

स्नो (१०५) महोदय ने एक सस्ते उपकरण को जुटाया। आपने "टेक्टर"[१]

1. "Tektor"

उपकरण में परिवर्तन किया और इससे आवेग-गणक को चलाया और यह गणक अश-एकत्रक को नियंत्रित करता था।

भार के अनुसार अंश-एकत्रण

यहाँ पर चार विविध उपकरणो का वर्णन किया जायगा—तीन १-२० मिलीलीटर अंशों के लिए उपयुक्त हैं और एक ५०-५०० मिलीलीटर तक के लिए।

फ़िलिप के आधार पर (१०५)

इसका बनाना कदाचित् सबसे सरल है। चित्र २५ मे इसकी कार्य-प्रणाली दिखायी गयी है।

क्षितिज के समानान्तर सतह पर दो डिस्के एक मध्यवर्ती तकुए से जुड़ी होती है। इन दोनो डिस्को की सारी परिधि पर छेद इस प्रकार होते है कि दोनो डिस्कों के किन्ही दो छेदों के आर-पार शीशे की एक नमूना-नली[1] जा सके। उपकरण के इस भाग को एक पात्र मे रखे जल मे रखा जाता है। इन नमूना-नलियों के दोनों सिरों को क्षितिज के समानान्तर धरातल मे दबा दिया जाता है; इस प्रकार ये पानी पर तैर सकती है। इनका कितना भाग पानी मे डूबा रहेगा, यह उनमें टपके द्रव के भार पर निर्भर होता है। जब ये ख़ाली होती है तो ऊपर तैर आती है, किन्तु इनकी गति चाकू-धार (क) से रोक दी जाती है। चाकू-धार को ऊपर नीचे उठाया जा सकता है। मध्यवर्ती तकुए में एक छोटे भार, रस्सी और घिर्री द्वारा तनाव दे दिया जाता है। स्तम्भ (ख) में से बहिरागामी नमूना-नली (ग) में टपकता है; इस प्रकार नली धीरे-धीरे भरती जाती है। जब द्रव का दाब अधिक हो जाता है तो नमूना-नली चाकू-धार (क) के नीचे दबकर बाहर निकल जाती है और दूसरी ख़ाली नली फिर उसी स्थान पर आ जाती है। चित्र २५ मे (घ) एक नली ऐसी है जो बाहर आ चुकी है।

1. Specimen-tube

इस उपकरण को सफलता-पूर्वक चलाने के लिए घर्षण-बलों[1] को बहुत कम होना चाहिए और नमूना-नली का सिरा चौकोर रखना चाहिए। कई एक नमूना-नलियो को लेकर उन पर नम्बर लगा देने चाहिए; प्रत्येक का ख़ाली और भरी अवस्था में भार अकित कर लिया जाता है।

जेम्स, मार्टिन एवं रैण्डल (१०६)

इन वैज्ञानिकों ने तीन उपकरणो का वर्णन किया है। पहले दो उपकरणों में ऐसा गोलाकार ढाँचा होता है, जिनमे ५/८ इच वाली १२० परख-नलियाँ
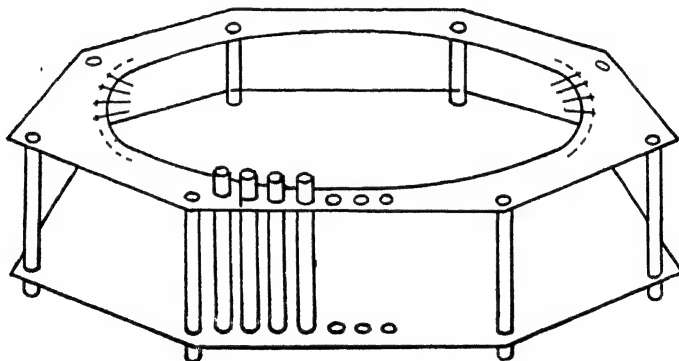
चित्र २६—अंश-एकत्रक के लिए परख-नलियों को रखने का लकड़ी का ढाँचा (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०६, जेम्स, मार्टिन एवं रेण्डल से परिवर्धित)

आ सकें; इन सबमें बाहर खिच सकनेवाली पिने लगी होती है। इन पिनो की दिशा इस प्रकार होती है जो ढाँचे के मध्य से किरणों[2] के समान मालूम हो, (देखिए चित्र २६)।

चित्र २७ में एक ऐसे तराजू का दण्ड दिखाया गया है, जिसमे स्तम्भ से निकलते हुए बहिरागामी को एकत्र किया जाता है और उसको साइफनप्रक्रिया

1. Frictional forces 2. Radial

द्वारा खींचकर उसकी निश्चित मात्रा को परख-नलियो मे भरा जाता है। इस प्रकार के दण्ड का दूसरे उपकरण मे उपयोग किया गया; पहले उपकरण की अपेक्षा यह सरल था।

चित्र २७—दण्ड की व्यवस्था (देखिए—पठनीय सामग्री—उल्लेख सं० १०६, जेम्स, मार्टिन एव रेण्डल से परिवर्धित)

इसका चलाने का सिद्धान्त सरल है। दण्ड में स्प्रिग द्वारा तनाव दे दिया जाता है जिससे जब भी कोई चीज़ बाहर निकाली जाती है तो ज़ोर से झटका लगता है। झटका साइफन-नली के भरने और खाली होने पर लगता है और इसके कारण दण्ड तराज़ू के अन्दर या बाहर आ जाता है। खिसकने वाले भागों की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि साइफन-नली आधे से लेकर दो-तिहाई तक ही भर पाये।

अश को बाहर निकालने की प्रक्रिया इस प्रकार है। हटनेवाले[1] फदे का निचला सिरा परख-नली के घूर्णन के अक्ष[2] से थोडा आगे होता है। जब साइफन-नली खाली होती है, तो दण्ड झुक जाता है जिससे हटनेवाला फदा किरण-दिशा में पिन से लग जाता है। जब साइफन-नली आधी भर जाती है, तो हटनेवाला फदा नीचे आ जाता है और जुड़ी हुई किरण की दिशा मे पिन से अलग हो जाता है। इससे दण्ड घूम जाता है और हटनेवाले फदे का निचला सिरा दूसरी पिन से जाकर लग जाता है। साइफन-नली बराबर भरती रहती है और परख-नली में इसका द्रव आता रहता है, इससे दण्ड झुकता है और फंदा ऊपर उठता है, जिससे कि ऊपर वाला सिरा फिर पिन से जाकर लग जाता है। इस प्रकार एक प्रक्रिया पूरी हो जाती है।

मध्यवर्ती खोखली डूबनेवाली नली को उठाकर अथवा नीचे करके साइफन-नली द्वारा डाले जानेवाले आयतन का नियंत्रण किया जाता है। नली का अन्दरूनी व्यास साइफ़न के बाहर वाली नली के व्यास, अर्थात् २ मिलीमीटर के बराबर होता है। यह एकत्रक ३० मिलीलीटर प्रति घटे की प्रवाह-गति के लिए उपयुक्त है। प्रयोग की सतोषजनक प्रगति के लिए अंश का न्यूनतम आयतन ०.५ मिली-लीटर होना चाहिए।

इन वैज्ञानिकों ने जिस तीसरे उपकरण का वर्णन किया, वह इसी सिद्धान्त का अद्भुत परिवर्धन है। इसमें परख-नलियों के कई घेरे होते है। जब सबसे अन्दर वाले घेरे की सब परख-नलियाँ भर जाती है, तो साइफ़न-नली का द्रव डालनेवाला भाग दूसरे बड़े घेरे मे जा पहुँचता है।

शैण्डन

यह उपकरण चित्र २८ में दिखाया गया है। यह (Shandon Scientific Company, 6 Cromwell Place, London. S. W. 7) से प्राप्य है।

इसमें पायरेक्स की लगभग एक ही भार की ५० परख-नलियाँ ली जाती है। अंश का भार ०.५से लेकर १५ ग्राम तक हो सकता है। घूमनेवाली मेज़ एक मज़बूत चबूतरे पर रखी जाती है। इस चबूतरे पर चलनेवाला मोटर

1. Escapement loop
2. Axis of rotation
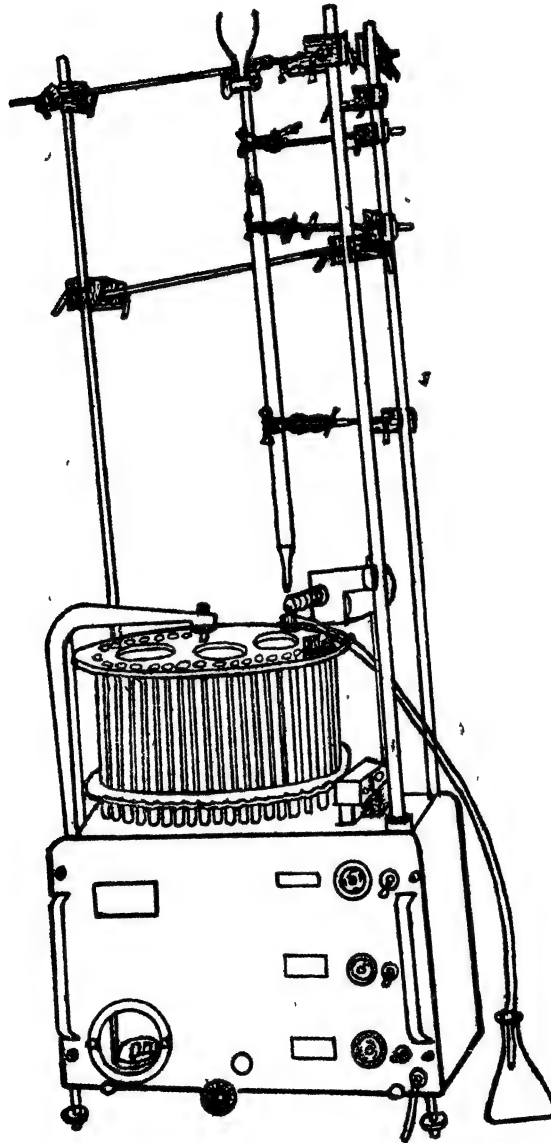
चित्र २८—शैण्डन कम्पनी का अंश-एकत्रक

सकता है। इतने बडे अशों के साथ धारको को सुगमतापूर्वक स्थिर रखा जा सकता है और द्रव-एकत्रक के भर जाने पर एकत्रक हटाया जा सकता है। चित्र २९ में इस उपकरण का एक भाग दिखाया गया है। धारक २५० मिलीलीटर के होते है और वे ४० वर्ग इच के एक स्टैंड मे नम्बर से घुमावदार[1] (सर्पिल) रूप से रखे रहते है। मेज पर एक सेतु[2] होता है जिसमें प्रवृत्त करनेवाला[3] योक्त्र लगा होता है। चित्र मे इसको कटा हुआ दिखाया गया है। बीच मे एक खोखला डंडा (क) होता है और इससे धारको का सर्पिल आरम्भ होता है। इसके साथ एक चलनेवाली भुजा (ख) होती है जो मेज के नीचे रखे मोटर और रिडक्शन योक्त्र (Klaxon Type HK 5080-M4 200 v. A.C., Capacitor reversing) से चलती है। चलनेवाली भुजा[4] तकुए के ऊपर जुड़ी होती है और चलाने पर यह चार मिनट मे एक चक्कर लगाती है।

चलनेवाली भुजा के साथ एक चलनेवाला भाग (ग) होता है, इसका स्थान एक अति लम्बे तार (घ) से शासित होता है, (घ) तीन बार बीच के डंडे के चारों ओर लिपटा रहता है। चलनेवाली भुजा के प्रत्येक सिरे पर घिर्री लगी रहती है। (ग) का सर्पिल भाग एक मिनट में ४$\frac{1}{2}$ चक्कर लगाता है। मेज पर सर्पिल में रखे धारक इस प्रकार लगे होते है कि उनके बीच का भाग (ग) के अन्त में लगी द्रव डालनेवाली नली के बिल्कुल नीचे आ जाय। सर्पिल में रखे धारकों की एक दूसरे से दूरी महत्त्वपूर्ण नहीं है। द्रव डालनेवाली नली मे शीशे की एक कीप रहती है और यह चलनेवाली भुजा के बीच में लगी रहती है। पारे का स्विच और पेंच एक डंडी से जुड़े होते है और यह डंडी (ग) से लगी होती है। पेंच साधारणतया बोतल के ऊपरी भाग पर ठहरा रहता है, किन्तु जब इसको ऊर्ध्वाघर धरातल में चलाया जाता है तो स्विच परिपथ[5] को तोड़ देता है।

चित्र ३० (क) मे प्रवृत्तक योक्त्र दिखाया गया है। स्तम्भ से बहिरागामी एक साइफन-नली में टपकता रहता है और यह नली तुला की एक भुजा से जुड़ी रहती है। तुला की भुजा मे स्प्रिग लगे रहते हैं जिससे जब साइफ़न-नली

1. Spiral 2. Bridge
3. Actuating 4. Traversing arm 5. Circuit
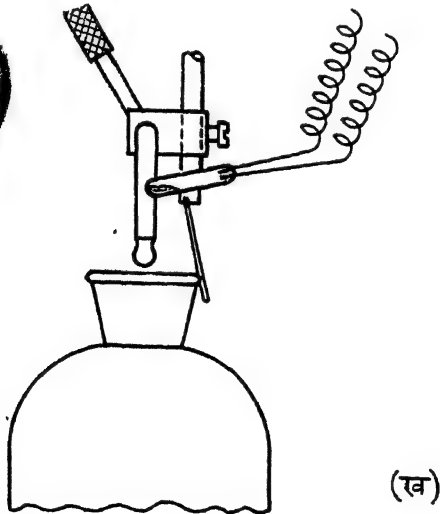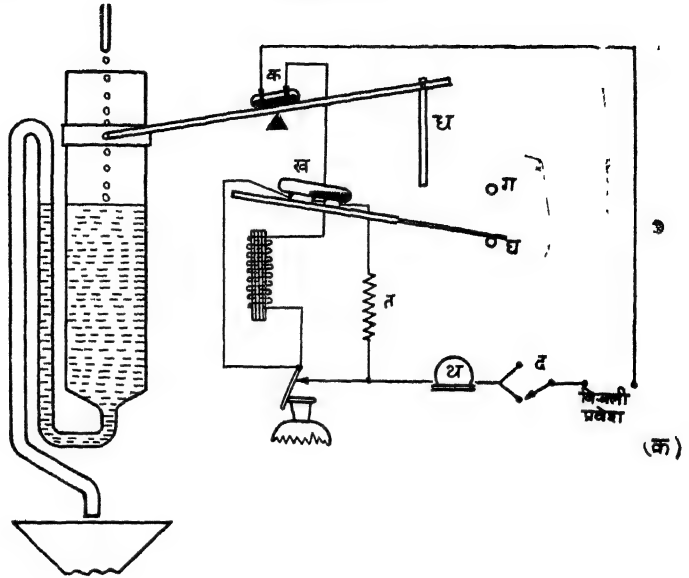
चित्र ३० 'क', 'ख'—अंश-एकत्रक को चलाने का रेखाचित्र (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १०७, ब्रिम्ले एवं स्नो के आधार पर)

आधी भर जाय तो तुला ठीक दशा में आ जाती है। तुला की भुजा पर पारे का एक स्विच (क) होता है और इसकी गति रुक-रुककर होती है (चित्र में इसे नहीं दिखाया गया है)। तुला की भुजा के नीचे एक सालीन्वायड[1] होता है और इसमे कीलकित धात्र[2] होता है, इसके साथ पारे का स्विच (ख) (दो रास्ते वाला) लगा होता है। सालीन्वायड मे बहती धारा धात्र को नीचे खीच लेती है जिससे बायी ओर के उपकरण स्पृष्ट होने लगते है। फिर से ठीक करनेवाला उत्तोलक[3] (घ) धात्र को दबा देता है जिससे दायी ओर के उपकरण स्पृष्ट होने लगते है। चित्र मे प्रतिरोधक (त) मोटर एव रिडक्शन योक्त्र (थ) और पलटनेवाला स्विच (द) भी दिखाये गये है।

प्रयोग में, उपकरण का एक चक्कर तब आरम्भ होता है जब एक बोतल बिल्कुल भर चुकी हो। भरी हुई बोतल के मुँह पर पेंच ठहरा हुआ होगा और पेंच से जुडा स्विच खुला होगा (देखिए चित्र ३० ख)। खाली साइफन-नली अपनी उच्च अवस्था में होगी और स्विच (क) भी खुला होगा। जब तक साइफन-नली आधी नही भर जाती तब तक कोई प्रक्रिया नही होती। किन्तु आधी भरने पर, स्विच (क) बन्द हो जाता है और मोटर चलने लगता है, क्योकि प्रतिरोधक[4] (त) और स्विच (ख) के दाये हाथ से धारा प्रवाहित होने लगती है। यह अवस्था चित्र मे दिखायी गयी है। जब पेंच बोतल के ऊपर आ जाता है और दूसरी तरफ सफाई से गिरता है तो पेंच से भी परिपथ बन जाता है। इससे स्विच (ख) झुक जाता है और मोटर चलता रहता है। अब धारा स्विच (ख) की दायीं ओर भी चलती रहती है और पेच का स्विच श्रेणी में आ जाता है। उपकरण मे यह प्रक्रिया तब तक होती रहती है जब तक पेच दूसरी बोतल तक नहीं पहुँच जाता। साइफन-नली भी बराबर भरती रहती है और इसका द्रव पहले कीप में आता है, बाद मे बोतल मे। जब साइफन-नली खाली होती है तो तुला की भुजा फिर से ऊपर उठती है और ऐसा होने पर फिर से ठीक करनेवाला उत्तोलक (घ) स्विच (ख) को ठीक से लगा देता है। इस प्रकार एक चक्कर पूरा हो जाता है।

सालीन्वायड और धात्र[5] (वस्तुत. एक पुराना बाल सुखानेवाला मोटर)

1. Solenoid 2. Pivoted armature 3. Resetting lever
4. Resistance 5. Armature

अच्छे होने चाहिए, क्योकि ये तभी काम करते है जब प्रतिरोधक (त) में बोल्ट का अन्तर पड़े और मोटर चलता रहे।

समय पर आधारित अंश-एकत्रक

समय पर आधारित अश-एकत्रक विभिन्न आयतन के अश के हो सकते है, क्योकि प्रयोग चलते समय द्रव-प्रवाह की गति में अन्तर पड़ सकता है। यद्यपि यह एक बड़ी कमी दिखाई पड़ती है, तथापि यह उतनी गम्भीर नही है। यदि अश की निश्चित मात्रा का परिमाणात्मक परिमापन करना हो तो यह समस्या गम्भीर है। निष्कासन के प्रयोगों में, विभाजन अथवा प्रतिरोधित[1] आयन-विनियम-स्तम्भो की भाँति, द्रव के प्रवाह की गति मे बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है और प्रायः एक पट्टी को निकालने वाले अंश के नियत आयतन का अनुमान किया जा सकता है। विस्थापन क्रोमैटोग्राफी में, अश का नियत आयतन इतना आवश्यक नही है।

समय पर आधारित अंश-एकत्रकों में कई अच्छाइयाँ होती है—अशों के आयतन को काफी घटाया या बढ़ाया जा सकता है, अंशो को एक ही मशीन से एकत्र किया जा सकता है और उपकरण सावधानी से बन जाता है। साधारणतया, गोलाकार डिस्क की परिधि पर धारक गोलाई से लगे होते है और यह डिस्क वैद्युत मोटर, अथवा घड़ी या चरखी और भार द्वारा समय-समय पर झटका खाकर घूमती रहती है। समय निर्धारित करने के लिए या तो वैद्युत समय-स्विच[2] होता है अथवा घड़ी की भाँति का कोई यंत्र होता है। इसकी कई डिज़ाइनें बनायी गयी है पर चित्र ३१ में दिखाया गया उपकरण सरलतम (१०५) है। उपकरण का चित्र ऊपर से बनाया गया है। डिस्क २० इंच व्यास की होती है और इसमें १४४ छेद होते हैं। इनमें से ७२ छेदों मे ५×$\frac{5}{8}$ इंच की परख-नलियाँ आ जाती है; इन नलियों में १५ मिलीलीटर द्रव रहता है। शेष ७२ छेदों मे ८×१$\frac{3}{8}$ इंच की परख-नलियाँ आती है और इनमें ९० मिलीलीटर तक द्रव आ जाता है।

छेदों के ये दोनों सेट सर्पिल आकार मे रहते है। बायीं ओर जो बक्स दिखाया

1. Buffered 2. Electric time switch

गया है उसमें ग्रामोफ़ोन का एक स्प्रिंग-मोटर और एक घडी है । डिस्क का घूर्णन चली हुई ईषा[1] द्वारा ग्रामोफ़ोन के मोटर से होता है, ईषा सीसे के पेंच की सीध में रहती है और वह पेंच को भी चलाती है। सीसे के पेंच के सिरे पर एक पुट्ठा[2] लगा होता है और यह डिस्क को १५° घुमा देता है। डिस्क में २४
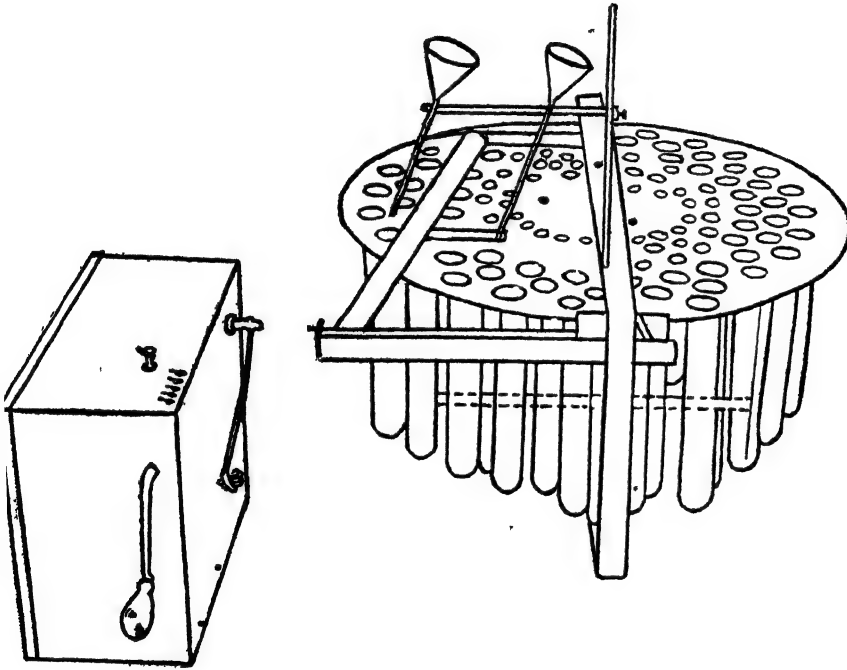
चित्र ३१—अंश-एकत्रक (स्नो के आधार पर)

खाइयाँ होती है। इस प्रकार, प्रत्येक झटके से डिस्क एक खाई के बाद दूसरी खाई पर आ जाती है। सीसे के पेंच के एक बार घूमने पर अर्ध-ढिबरी[3] भी १/१० इंच हट जाती है, जिससे नली के मध्य में द्रव भरनेवाली नली आ जाती है।

1. Shaft 2. Scroll 3. Half-nut

ग्रामोफोन-मोटर से चली हुई ईषा-द्वारा एक किरणीय भुजा जुड़ी होती है और इसके बीच में रुक-रुककर होनेवाली क्रिया होती है। किरणीय भुजा मे उसकी बाहरी ओर इस्पात-नली का एक छोटा चाप लगा होता है और इस चाप मे ६ पिने लगी होती है। पिनों को निकाला जा सकता है। एक एक करके ये पिनें ईषा के सिरे पर जुड़े घेरे (निकलने-वाले[1]) के अन्दर और बाहर जाती है।

ईषा एक घडी से लगी होती है और यह हर ५ मिनट मे एक बार घूम जाती है। इस उपकरण की कार्यवाही ५, १०, १५, २०, २५ अथवा ३० मिनटों के अन्तर पर की जा सकती है।

छेदों की सर्पिल व्यवस्था से उपकरण काफ़ी छोटा रहता है और इसको लगाने मे कोई विशेष कठिनाई नही होती।

अन्य सहायक उपकरण

वैद्युत चालकता और pH की माप

कभी-कभी क्रोमैटोग्राफीय विधि में विलयनो के इन दो गुणो का मापन करना पडता है। पाट्रिज एव वेस्टल (९६) ने एक सुगम व्यवस्था बतायी है जिससे चालन विद्युदग्र[2] और शीशे के विद्युदग्र पर्सपेक्स के डब्बे मे बनाये गये। बहुत छोटे स्तम्भो के लिए, जहाँ मिश्रण न्यूनतम कर देना चाहिए, चित्र ३२ में दिखाये चालकता-सेल को स्तम्भ के निचले भाग मे लगाया जा सकता है।

प्लैटिनम तार के एक इच के दो (०.६५ मिलीमीटर व्यास वाले) टुकड़ो को झुकाकर "L" अक्षर के आकार का बना लिया गया। इनसे विद्युदग्र बनाये गये। इनके लम्बे सिरे नीले सीस-शीशे[3] की एक घुडी से जुडे थे। शीशे की छड को पिघला और खीचकर "Y" के आकार का बना लिया गया। प्लैटिनम तारों के छोटे सिरों को "Y" की भुजाओ से जोड़ दिया गया। इससे एक अस्थायी अवलंबक[4] बन गया, जिसको चित्र ३२ मे दिखाया गया है। अब नीले सीस-

1. Escapement ring 2. Conduction electrodes
3. Lead-glass 4. Holder

शीशे की दो घुडियाँ प्लैटिनम तारो के छोटे सिरों पर पिघलाकर जोड़ दी गयी। जहाँ से ये तार शीशे मे जुड़ते थे बिलकुल वहीं पर ये घुडियाँ भी थी। प्लैटिनम
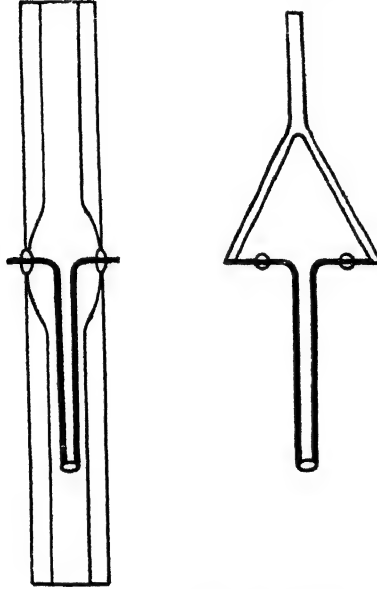
चित्र ३२—छोटा चालकता-सेल

तारों की लबी भुजाएँ अब समानांतर होनी चाहिए और उनमें १½ मिलीमीटर का फ़ासला होना चाहिए।

सेल का मुख्य भाग मोटी दीवार वाली केश-नलिका से बना होता है। इसके दो छोटे टुकड़े लीजिए। इनके सिरों को चौकोर बना लिया जाता है। विद्युदग्रो को "y" की लंबी भुजा से पकड़ा जाता है और एक केश-नलिका को गरम किया जाता है। तब विद्युदग्रो को केश-नलिका मे लटकाया जाता है और घुडियो को पिघलाकर तार के छोटे सिरो को केश-नलिका के चौकोर सिरे से चिपका दिया जाता है। तत्पश्चात् "y" के आकार के अवलबक को तोड़ दिया जाता है और दूसरी केशनलिका को भी नीली घुडियो के ऊपर जोड दिया जाता है। इस प्रकार जब केश-नलिकाएँ (चौकोर पर चौकोर) भली-भाँति जुड़ जाती है तो सेल तैयार हो जाता है। विद्युदग्रो पर काले प्लैटिनम की सतह चढ़ा ली जाती

है। ऐसा करने के लिए सेल पर रबर की ढँपुनी चढा ली जाती है और उससे सेल में प्लैटिनिक क्लोराइड का विलयन खीच लिया जाता है; तत्पश्चात् ध्रुवो को बदलकर कुछ समय के लिए उसमे साधारण विधि से धारा प्रवाहित की जाती है।

यहाँ पर दी गयी मापो के सेल से काम करने पर मापे गये प्रतिरोध को सापेक्ष प्रतिरोध जानने के लिए तीन से गुणा करना पडता है। अतः आवश्यकतानुसार सेल की मापो को घटाया जा सकता है।

जेम्स मार्टिन एव रैन्डल (१०६) ने परिपथ का एक चित्र दिया है। इसमें दिखाया गया है कि चालकता मे परिवर्तन के अकन के लिए एक चालकता-सेल को किस प्रकार दुहरा[1] किया जा सकता है।

लासकाउस्की एव पुट्शर (१०८) ने इसी भाँति एक पारविद्युत नियुत सवेदनशील "थर्मो कैप"[2] रिले का उपयोग पहचानने के लिए किया।

लवण-रहित करनेवाला उपकरण

यदि किसी विलयन को लवण-रहित करना है तो सबसे सरल उपाय यह है कि मोटे कागज पर उसके क्रोमैटोग्राम को चलाया जाय; और इसके पश्चात् लवण की पट्टी के अतिरिक्त सब पट्टियो का निष्कासन कर लिया जाय। किन्तु इस विधि से लवण-रहित विलयन की थोडी मात्रा ही तैयार हो पाती है।

कभी-कभी लवण को पृथक् आयनो मे आयन-विनिमय स्तम्भो पर पृथक् करना पड़ता है और कभी-कभी आयन-रहित करनेवाले मिश्रित स्तम्भो पर चलाना पडता है, जैसा जीवो से प्राप्त विलयनो मे किया जाता है।

तीसरी विद्युद्-विश्लेषण की विधि है। इसको कान्सडेन, गार्डन एवं मार्टिन (१०९) ने निकाला। लवणरहित किये जानेवाले द्रव को पारे पर तैरा दिया जाता है और पारा लोह के ऋणाग्र से जुडा होता है। धनाग्र शीशे की चौड़ी नली के लम्वे टुकड़े को सेलोफेन झिल्ली से नीचे की ओर सील करके बनाया जाता हैं। धनाग्र के मुख्य भाग को ० १ नार्मल सल्फ्यूरिक अम्ल के विलयन मे डुबो दिया जाता है। तीव्र विद्युद्-विश्लेष्य[3] झिल्ली से बाहर निकल आते है, किन्तु हलके अम्ल और बिना किसी चार्ज के अणु बाहर नही निकल पाते, यदि निकलते

1. Coupled 2. Dielectric constant sensitive "Thermocap" relay
3. Strong electrolytes

भी है तो बहुत ही सूक्ष्म मात्रा में। पारे से हाइड्रोजन आयन और अकार्बनिक धनायन चार्ज-रहित हो जाते है। यह क्रम बराबर चलता रहता है, पारे में घुले द्रव्य जल की धारा में बहकर निकल जाते है और नल की धारा पारे पर बराबर चलती रहती है।

चित्र ३३ मे जो उपकरण दिखाया गया है, वह शैन्डन साइटिफिक कम्पनी (6 Cromwell Place, London, S. W. 7) का है। यह डेन्ट द्वारा कान्सेडन, गार्डन और मार्टिन के यत्र के परिवर्धन पर आधारित है। चित्र मे दिये हुए नम्बरों पर ध्यान दीजिए। जल (१०) से प्रवेश करता है। प्रवाह की गति इतनी रखी जाती हैं कि पारा, नली (९) मे जल की धारा के साथ चला जाय; जल नली (११) से निकलकर वेकार चला जाता है।

विद्युद्-विश्लेषण विभाग (५) मे नीचे की ओर और नली (९) के निचले सिरे पर लगभग ५० मिलीलीटर पारा रहता है। जब पारा चलता रहता है तो इसकी सतह विद्युद्-विश्लेषण विभाग की अंदरूनी नली से लगभग ३ मिलीमीटर ऊपर होती है। धनाग्र पात्र (४) मे नली (१) से तनु सल्फ्यूरिक अम्ल आता हैं। ठडा करनेवाला पात्र (२) है और अम्ल-नली (१२) से खाली की जाती है। नली (३) मे गैस रहती है, (७) और (८) विद्युत् के प्रवेश एवं निकास द्वार है। इस उपकरण में १ से १० मिलीलीटर तक द्रवो को लवण-रहित किया जा सकता है।

अंमापी[1] को देखते रहने पर लवण-रहित होनेवाली प्रक्रिया का परीक्षण किया जा सकता है; जैसे-जैसे आयन हटते जाते है, वैसे-वैसे धारा-प्रवाह भी कम हो जाता है।

कान्सडेन, गार्डन एव मार्टिन ने अपने मौलिक उपकरण से कई प्रयोग किये। आपने कई अमीनो-अम्लो को अच्छी मात्रा मे सोडियम हाइड्राक्साइड और सोडियम सल्फेट से पृथक् किया। स्टाइन एव मूर (११०) ने ज्ञात किया कि कुछ अमीनो-अम्लो की मात्रा लवण-रहित होने की प्रक्रिया में कम हो जाती थी; आर्जीनीन तो काफी मात्रा में नष्ट हो जाती थी। इसकी लगभग तीन-चौथाई मात्रा आर्नीथीन मे परिवर्तित होती थी।

1. Ammeter
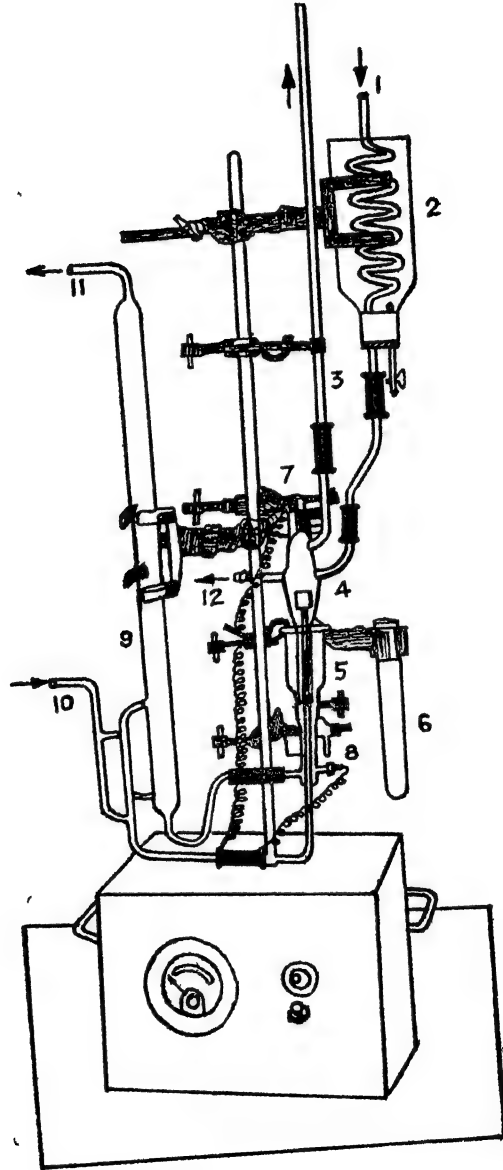
चित्र ३३—लवणरहित करनेवाला यन्त्र

परिशिष्ट (क)

विलायकों, फुहारों[1] और सा श्र मानों का विस्तृत विवेचन

स्वर्ण-समूह के तत्त्व (देखिए:—एम० लेडेरर, Nature, १६२, पृ० ७७६, १९४८)

धातुओं को अम्ल-राज[2] मे घोला गया और तब उतने ही आयतन के जल से तनु कर लिया गया। नार्मल जलीय हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से संतृप्त ब्युटेनाल का विलायक के रूप में प्रयोग किया गया। केश-नलिका में चढाव वाली विधि का उपयोग किया गया। द्रव के दो अग्रभाग बने—पहला जलरहित ब्युटेनाल का था और दूसरा (गहरी सीमा के रूप में बिलकुल स्पष्ट) जलीय ब्युटेनाल का था।

सा श्र मान (जलीय अग्रभाग के अनुसार)—

रजत	०.०
ताम्र	० १
पैलेडियम	० ६
प्लैटिनम	० ७२–० ८०
स्वर्ण	१.०५–१ १३

रजत और प्लैटिनम के धब्बे पीले थे और प्लैटिनम के नारगी रग के। अमोनिया के ऊपर क्रोमैटोग्राम का प्रस्फुटन किया गया और तब हाइड्रोजन सल्फाइड से स्वर्ण और पैलेडियम के गहरे भूरे धब्बे, तथा रजत और ताम्र के काले धब्बे प्राप्त किये गये। स्वर्ण ने कलिलीय[3] स्वर्ण की रेखा भी बनायी।

अन्य धातुएँ (देखिए—टी० वी० आर्डेन, एफ० एच० बर्स्टल, जे० ए० लीविस एवं आर० पी० लिनस्टेड, Nature १६२. पृ० ६९१. १९४८)

1. Sprays   2. Aqua regia   3. Colloidal

कोई भी सा श्र मान नही दिये गये है। दावा किया गया है कि इस विधि द्वारा ०.१—१ ० माइक्रो–धातुओ तक की पहचान कर ली जा सकती है। प्रयोग मे साधारण रूप से ५ माइक्रो–मात्राएँ ही ली गयी।

कैलसियम, स्ट्रौशियम और बेरियम—इनकी क्लोराइड ली गयी और विलायक के रूप मे ४ प्रतिशत पिरीडीन-पोटाशियम थायोसायेनेट लिया गया। सोडियम र्‌होडीजोनेट से बेरियम और स्ट्रौशियम का प्रस्फुटन किया गया, तथा ऐलीजरीन से कैलसियम का।

एल्यूमिनियम, गैलियम, इण्डियम और जस्ता—इनकी भी क्लोराइड ली गयी और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से युक्त ब्युटेनाल मे इनको प्रस्फुटित किया गया। "एल्यूमिनान" एल्यूमिनियम एव गैलियम को प्रस्फुटित करता है, "डाइथाइजोन" इण्डियम को।

वैनेडियम—डाइएथिल ईथर अथवा टेट्राहाइड्रो सिल्वेन (२–मेथिल टेट्रा-हाइड्रो फ्यूरेन) मे थोड़ा नाइट्रिक अम्ल डाला गया और हाइड्रोजन पर आक्साइड की थोड़ी मात्रा मिलायी गयी, इसका विलायक रूप मे प्रयोग किया गया। ८–हाइड्राक्सी क्वीनोलीन से इसका प्रस्फुटन करके हलके गुलाबी रग की पट्टी (पर आक्सी यौगिक) प्राप्त की गयी।

पारा—टेट्राहाइड्रो सिल्वेन या टेट्राहाइड्रो पायरान पारे को अन्य धातुओं की क्लोराइड से पृथक् करता है। डाइथाइजोन से इसका प्रस्फुटन किया जाता है।

कोबाल्ट, ताँबा, लोह, मैंगनीज एवं निकल—मेथिल नार्मल-प्रोपिल कीटोन मे इनकी क्लोराइड ली गयी अथवा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल युक्त ऐसीटोन मे इनको लिया गया। (एक सुगम मिश्रण की रचना यह है—मेथिल नार्मल-प्रोपिल कीटोन ८० प्रतिशत, ऐसीटोन १० प्रतिशत एव हाइड्रोक्लोरिक अम्ल १० प्रतिशत।)

निकल, कोबाल्ट एव ताम्र को रूबियनिक अम्ल से पहचाना जाता है; मैंगनीज को अमोनिया युक्त रजत विलयन से, निकल एव कोबाल्ट का परिमाणात्मक निर्धारण पोलैरोग्राम से किया गया।

एम० लेडेरर (Nature, १६३, पृ० ५९८, १९४९) ने एक नार्मल हाइड्रोक्लोरिक अम्ल से सतृप्त ब्युटेनाल का उपयोग किया और निम्नलिखित सा श्र मान प्राप्त किये।

आयन	सा श्र	आयन	सा श्र
Ag^{+}	० ०	Hg^{++}	१ ०२-१ १०
Cu^{++}	०.०८—०.१३	Pt^{+++}	०.७२-० ८०
Cd^{++}	०.५६—०.६५	Rh^{+++}	०.०७
Bi^{+++}	०.६१—०.६८	RuO_4^{--}	०.१
Pb^{++}	०.०	Ir^{++++}	०.७२-०.८
As^{+++}	०.६७—०.७३	Au^{+++}	१.०५-१.१३
Sb^{+++}	० ८ लगभग*	Fe^{+++}	०.१२
Sn^{++}	० ९५—०.९९	Co^{++}	०.०७
MoO_4^{--}	०.५—०.५३	Ni^{++}	०.०७
UO_2^{--}	० २	Mn^{++}	०.०९
U^{++++}	० ०	Sr^{++}	०.०
Pd^{++}	०.६	Ba^{++}	०.०

शर्कराएँ और संबंधित पदार्थ [एस० एम० पार्ट्रिज (११)]

जर्मिन एवं आइशरउड (१३) ने निम्नलिखित विलायको से अधिक अच्छे पृथक्करण किये—

(क) 'एथिल ऐसीटेट—ऐसीटिक अम्ल—जल (आयतन अनुसार ३ : १ : ३), और

(ख) एथिल ऐसीटेट—पिरीडीन—जल (आयतन अनुसार २ : १ : २)।

इन विलायको से निम्न सा श्र मान आये; विलायक को कागज़ के अत तक दौडाना चाहिए।

*विस्तार आवश्यक

शर्करा	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग	विलायक घ
डी-अरैबिनोज	०.५४	०.४३	०.२१	०.२१
डी-डीआक्सीराइबोज	०.७३	० ६०	—	०.३२
एल-फ्युकोज	० ६३	०.४४	०.२७	—
डी-फ्रक्टोज	० ५१	०.४२	०.२३	०.१८
डी-गैलेक्टोज	०.४४	०.३४	०.१६	०.१४
डी-ग्लूकोज	०.३९	०.३९	०.१८	०.१३
लैक्टोज	०.३८	०.२४	०.०९	०.०७
माल्टोज	०.३६	०.३२	०.११	०.०८५
डी-मैनोज	०.४५	०.४६	०.२०	०.१५
रैफीनोज	०.२७	०.२०	०.०५	—
एल-रैमनोज	०.५९	०.५९	०.३७	०.३०
डी-राइबोज	० ५९	०.५६	०.३१	०.२२
एल-सारबोज़	० ४२	०.४०	० २०	०.१६
सुक्रोज	०.३९	०.४०	०.१४	—
डी-जाइलोज	० ४४	० ५०	०.२८	०.१९
डी-गैलेकटुरानिक अम्ल	० १३	०.१४	०.१४	०.०९
डी-ग्लूकुरानिक अम्ल	० १२	०.१६ (०.७२)*	० १२ (० ३२)*	०.०८ (०.२२)*
डी-ग्लूकुरोन	० १२	— (०.७२)*	— (०.३३)*	— (०.२२)*
डी-ग्लूकोसमामीन हाइड्रोक्लोराइड	०.६२	०.३२	०.१३ (०.१७)†	०.०५ (०.२०)†
काड्रोसामीन हाइड्रोक्लोराइड	०.६५	०.२८	० १२ (०.१६)†	— (०.१९)†
नार्मल-ऐसीटिल ग्लूको-ज़ामीन	०.६९	०.५०	०.२६	०.२५
एल-ऐसकार्बिक अम्ल	०.२४	०.४२	०.३८	०.१९
डिहाइड्रो-ऐसकार्बिक अम्ल	०.१६	०.६८	०.२७	०.१६
इनोसिटाल	०.२३	०.१०	०.०९	—

विलायक क—फीनोल-अमोनिया (भार/आयतन १ प्रतिशत), हाइड्रोजन सायेनाइड के साथ।

विलायक ख—एस—कालीडीन

विलायक ग—नार्मल ब्युटेनाल—ऐसीटिक अम्ल—जल ४०-१०-५० (आयतन के अनुसार)

विलायक घ—आइसोब्युटिरिक अम्ल।

*लैकटोन के कारण

† स्वतंत्र भस्म के कारण, ये धब्बे जुडे हुए थे।

पार्ट्रिज तथा जर्मिन एवं आइशरउड ने पार्ट्रिज के फव्वारे (फुहार) का उपयोग किया। (विलयन क मे नैफ्थोसार्सिनाल था—भार/आयतन ०.२ प्रतिशत; विलयन ख जल में ट्राइक्लोर ऐसीटिक अम्ल था—भार/आयतन २ प्रतिशत। इन विलयनों के बराबर आयतन को प्रयोग के पहले मिला लिया गया।) फुहार छोडने के बाद क्रोमैटोग्राम को आशिक रूप से साधारण ताप पर सूखने दिया गया। तब उसे १००-१०५° श पर ५-१० मिनट तक ऊष्मक मे सुखाया गया। फ्रक्टोज, सारबोज, सुक्रोज एवं रैफीनोज ने गहरे लाल रग के धब्बे दिये; ये कम से कम १२ घटे तक स्थायी रहते हैं। कीटोजो के लिए प्रतिक्रिया मे चयन-शीलता[1] थी। अन्य शर्कराओ ने १००° श पर रग के केवल सूक्ष्म धब्बे बनाये। यदि खुली हवा में इस क्रोमैटोग्राम को थोडी देर तक रख दिया जाय तो पेटोज़ और यूरोनिक अम्ल गहरे नीले रंग के धब्बे बनाते है। ७०-८०° ताप पर और नम वायु में नीले धब्बे १०-१५ मिनट मे बनते है; इस दशा में कीटोज नारगी भूरे रग के थे। हेक्सोजामीन एव नार्मल ऐसीटिल हेक्सोजामीन एल्सन एवं मार्गन (१९३३) के आविष्कृत प्रतिकर्मक से प्रस्फुटित किये गये।

पार्ट्रिज ने शर्कराओ के लिए अच्छे फव्वारे (फुहार) को ज्ञात किया (Nature १६४, पृ० ४४३, १९४९)। यह प्रतिकर्मक इस प्रकार बनाया जाता है—ऐनीलीन (०.९३ ग्राम) और थैलिक अम्ल (१.६० ग्राम) को जल-सतृप्त ब्युटेनाल (१०० मिलीलीटर) में डाला जाता है। फव्वारे के बाद क्रोमैटोग्राम को १०५° श पर गरम किया जाता है जिससे रंग बन जायें। ऐल्डो-पेन्टोज़ चमकीले

1. Selective

लाल रग के धब्बे बनाते है, ऐल्डो-हेक्सोज, डेस-आक्सी शर्कराएँ और यूरोनिक हरे एव भूरे रंग के कई हलके धब्बे बनाते है। कीटोजो का प्रस्फुटन सतोषजनक रूप से नही होता।

पार्ट्रिज ने भी अवकारक शर्कराओ के पहचानने के लिए अमोनिया-युक्त सिल्वर नाइट्रेट के विलयन का उपयोग किया, यद्यपि इस प्रतिकर्मक की विशिष्ट प्रतिक्रिया नही होती।

वसीय अम्ल (एफ ब्राउन, Biochem. J. ४७, पृ० ५९८, १९५०)

अम्ल	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग
फार्मेट	० ०९	०.०८	०.१४
ऐसीटेट	०.१०	०.०९	०.१६
प्रोपियोनेट	० १९	० १८	०.२६
नार्मल-ब्युटिरेट	० ३३	० ३०	० ३९
आइसो-ब्युटिरेट	० ३१	०.२८	०.३७
नार्मल-वैलीरेट	० ४५	०.४१	०.५८
आइसो-वैलीरेट	०.३९	०.३६	०.५५
नार्मल-कैप्रोएट	०.६१	० ५५	०.७१
आइसो-कैप्रोएट	० ६०	० ५४	० ६९
नार्मल-आक्टोनेट	० ७४	०.६९	० ८०

विलायक क—नार्मल ब्युटेनाल, १ ५ नार्मल जलीय अमोनिया ५०/५०, आयतन/आयतन।

विलायक ख—नार्मल ब्युटेनाल, ३.० नार्मल जलीय अमोनिया-५०/५०, आयतन/आयतन।

विलायक ग—नार्मल-ब्युटेनाल। एथेनाल। ३.० नार्मल जलीय अमोनिया—४०/१०/५० आयतन/आयतन।

वाष्पशीलता के कारण इनके सोडियम लवण लिये गये।

फव्वारे में ०.०४ प्रतिशत ब्रोमोथाइमोल ब्लू का विलयन था, सोडियम हाइड्राक्साइड से इसका pH ७.५ कर लिया गया था।

कीटो अम्ल (डी० कैवेलीनी, एन० फ्रानटेली एवं जी० टोशी, Nature, १६३, पृ० ५६८, १९४९)

अम्लो को २, ४—डाइनाइट्रो फ़ेनिल हाइड्रेजोनो में परिवर्तित कर लिया गया—इनको ०.०१ मोलर फास्फेट प्रतिरोध pH ७.२ मे घोला गया, साद्रण २५γ/०.१ मिलीलीटर रखा गया। चूँकि ये यौगिक रगीन थे, अत इनमें फव्वारे की आवश्यकता नही पड़ी। परिमाणात्मक परख करने से ज्ञात हुआ कि औसतन ९१ प्रतिशत यौगिकों की प्राप्ति होती है।

अम्ल	विलायक क	विलायक ख	विलायक ग
ऐल्फा-कीटोग्लूटारिक	०.०७	०.०५	०.२६
आक्सेलो ऐसीटिक	०.१३	०.१२	० २८
ग्लाइकाक्सिलिक	०.१७	०.२४	०.३२
पिरूविक	० २१	०.३५	०.३६
ऐसीटोऐसीटिक	०.२६	०.४०	०.४३
ऐल्फा कीटो-गामा मेथायो ब्युटिरिक	० ४३	०.६२	०.५५
ऐल्फा-कीटोब्युटिरिक	०.४३	०.६५	०.५३
पैरा-हाइड्राक्सी फेनिल पिरूविक	०.६०	०.६४	०.५५
फिनाइल पिरूविक	०.५९	०.८०	०.६६

विलायक क—ब्युटेनाल।

विलायक ख—३ प्रतिशत अमोनिया (आयतन / आयतन) से संतृप्त ब्युटेनाल।

विलायक ग—ब्युटेनाल, एथेनाल, जल—५० : १० ४० आयतन/आयतन।

अमीनो-अम्ल—विलियम्स एव कर्बी (१२) ने कुछ मान दिये है; कान्सडेन गार्डन एव मार्टिन ने भी अपनी "केश-नली-चढ़ाव" विधि से इन मानों की तुलना की है।

विलायक

अमीनो-अम्ल	फीनोल – जल + N H 3		कालीडीन		नार्मल ब्युटेनाल + N H_3 (3%)		आइसो ब्युटिरिक अम्ल	
	१	२	१	२	१	२	१	२
ऐलानीन	०.५४–०.५९	०.५५	० ३२	० ३२	०.०९	०.०६	०.४४	०.४२
आर्जीनीन	०.५९–०.८९	०.५४	०.१६	० १७	०.०५	०.०३	०.४०	०.३८
ऐस्पार्टिक अम्ल	०.१२–०.१७	०.२२	० २२	०.२३	०.०१	०.०१	०.३१	०.२७
सिस्टीन	०.१३–०.३०	०.२४	०.१४	०.११	०.०१	०.०१	०.२५	०.१४
ग्लूटामिक अम्ल	०.१३–०.२८	०.२३	० २५	०.२७	० ०१	० ०२	०.३८	० ३३
ग्लाइसीन	० ४०–० ४२	० ३६	० २५	० २६	०.०५	० ०३	० ३६	०.३४
हिस्टीडीन	० ६८–० ७२	० ६२	०.२८	०.३०	०.०९	०.०२	०.४५	०.३६
हाइड्राक्सी प्रोलीन	०.५० —	—	—	—	—	—	—	—
आइसो ल्युसीन	०.८१–०.८६	०.८३	० ५४	० ५३	० ४०	० ३४	०.७६	०.७४
लैथायोनीन	० ११ —	—	—	—	—	—	—	—
ल्युसीन	० ८३–० ८८	०.८०	० ५८	० ५५	०.४६	०.३५	०.७८	०.७७
लाइसीन	० ४६–० ८२	०.४१	०.१४	० ११	० ०३	०.०१	०.२७	०.३४
मेथायोनीन	० ७६–० ८३	०.७४	० ५७	० ५३	० ०५	० २२	०.६९	०.६३
नारल्युसीन	० ८५–०.८९	०.८३	० ६०	०.५५	०.५१	०.४१	०.७९	०.७९
नारवैलीन	०.७८–०.८१	०.७५	०.४८	० ४४	०.३१	०.२५	०.७१	०.६८
आर्नीथीन	०.७३ —	—	—	—	—	—	—	—

अमीनो-अम्ल	फ़ीनोल — जल + N H 3		कालीडीन		नार्मल ब्युटेनाल + N H_3 (3%)		आइसो ब्युटिरिक अम्ल	
	१		१	२	१	२	१	२
फ़िनाइल-ऐलानीन	०.८६—०.९०	०.८३	—	—	—	—	—	—
प्रोलीन	०.८५—०.९१	०.८८	०.३५	०.३४	०.१४	०.०८	०.५७	०.५५
सीरीन	०.३३—०.३६	०.३०	०.२८	०.३०	०.०५	०.०४	०.३४	०.३२
थ्रियोनीन	०.४१—०.५०	०.४३	०.३२	०.३२	०.०८	०.०५	०.४३	० ४१
ट्रिप्टोफेन	०.७६—०.८६	०.७१	० ६२	०.५९	—	०.२०	—	०.६३
टायरोसीन	०.५९—० ६४	० ५५	०.६४	०.५९	०.१४	०.१४	० ५८	०.४७

१ विलियम्स एव कर्बी (१२)। २—कान्सडेन और उनके साथी।

दूसरे अध्याय मे निनहाइड्रिन फव्वारे (फुहार) का विस्तृत वर्णन किया गया है। निनहाइड्रिन प्रतिक्रिया की तुलना मे एक और अधिक अच्छी विधि है—यह ऐसीटिल युक्त अमीनो-अम्लो, पेप्टाइडो, डाइकीटोपिपराजीन एवं प्रोटीनों के लिए उपयुक्त है। इसका वर्णन एच० एन० राइडन एवं पी० डब्लू० जी० स्मिथ ने किया है—देखिए Nature, १६९, पृ० ९२२, १९५२। विलायक चलाने और सुखाने के बाद, क्रोमैटोग्राम को शुष्क क्लोरीन मे दस मिनट के लिए रखा जाता है। तब आधे घंटे के लिए उसे साधारण ताप पर हवा में रहने दिया जाता है; तत्पश्चात् उस पर १ प्रतिशत पोटाशियम आयोडाइड एवं १ प्रतिशत स्टार्च के विलयन से फुहार डाली जाती है।

ए० आर० केम्बल एवं एच० टी० मैकफर्लन (Nature, १७०, पृ० ८४, १९५२) ने एक ऐसे फव्वारे का वर्णन किया है जो बाद मे विश्लेषण से हस्तक्षेप नही करता। इसकी रचना यह है—३ मिलीलीटर फ़ार्मेलीन, ०.१ मिलीलीटर ६० प्रतिशत जलीय पोटाशियम हाइड्राक्साइड; ये २० मिलीलीटर ०.१५ प्रतिशत (भार/आयतन) ब्रोमोथाइमोल ब्लू मे जो ९५ प्रतिशत ऐलकोहल में घुला होता है, डाले जाते है।

पदार्थ	ब्युटेनाल + ऐसीटिक अम्ल + जल ४०-१०-५० आयतन/आयतन	मेटाक्रीसोल + ऐसीटिक अम्ल + जल ५०-२-४८ आयतन/आयतन	फव्वारा: अमोनिया युक्त सिल्वर नाइट्रेट	फव्वारा: फ़ेरिक क्लोराइड
बेजोइक अम्ल	०.९२	०.९३	—	—
कैटीकाल	०.९१	०.७४	+ +	काला
सिनैमिक अम्ल	०.९४	०.९२	—	पीला
आर्थो कुमारिक अम्ल	०.९४	० ८२	+	नारगी
गैलिक अम्ल	० ६८	० ०८	+ +	गहरा भूरा जस्ते के रंग का
मेटा हाइड्राक्सी बेजोइक	०.९१	०.७२	—	हल्का पीला
पैरा हाइड्राक्सी बेजोइक	०.९०	० ७२	—	गहरा पीला
आर्सीनाल	०.९१	०.७५	÷	जस्तई रंग
फ्लोरो ग्लूसीनाल	०.७६	०.१६	+	जस्तई रग
फ्लोरो ग्लूसीनाल कार्बाक्सिलिक अम्ल	०.५५	०.०६	—	जस्तई रग
प्रोटो कैटी चूइक अम्ल	०.८५	०.३५	+ +	काही
पायरोगैलाल	०.७७	०.३८	+ +	लाली लिये भूरा
क्वीनाल	०.८८	०.६९	+	जस्तई
रिसार्सीनाल	०.९१	०.६३	+	जस्तई
बीटा-रिसार्सिलिक अम्ल	०.९३	०.५४	—	बैंजनी
सैलीसिलिक अम्ल	० ९५	० ८४	—	बैंजनी
वैनीलिक अम्ल	०.९२	०.८१	—	चमडे का रंग

तालिका संबंधी टिप्पणियाँ

१. अमोनिया-युक्त सिल्वर नाइट्रेट—० १ नार्मल सिल्वर नाइट्रेट और ५ नार्मल अमोनिया के बराबर आयतनो को मिलाइए।

२. फ़ेरिक क्लोराइड—२ प्रतिशत जलीय।

३. धब्बों की उपस्थिति जानने के लिए बैंजनी—अतीत प्रकाश का भी उपयोग किया जाता है।

४. कई फ्लैवोनो और ऐन्थोसायेनिनो के भी साश्र मान इस शोध-निबंध में दिये हुए है।

फ़ास्फ़ोरिक एस्टर [हानेस एव आइशरउड (१४)]

इन वैज्ञानिको ने तीन विलायको के मिश्रण का उपयोग किया। साधारणतया विलायक को कागज के सिरे तक चलाया गया। प्रत्येक क्रोमैटोग्राफीय पतली स्ट्रिप के सिरे पर छनने कागज की गद्दी रहती थी, जिसमे विलायक सोखता रहता था। इनके शोध-निबध मे से चित्र ३४ को लिया गया है। सा श्र मानो के स्थान पर पदार्थो के चलने की वास्तविक दूरी दी गयी है, क्योकि इन विलयशीलों एवं विलायको के सा श्र मान काफी निम्न थे।

ये वैज्ञानिक (क) वर्ग के विलायको का उपयोग करके कई कार्बनिक अम्लो (वसीय, हाइड्राक्सी, डाइ एव-ट्राइ कार्बाक्सिलिक) को भी पृथक् करने मे सफल हुए।
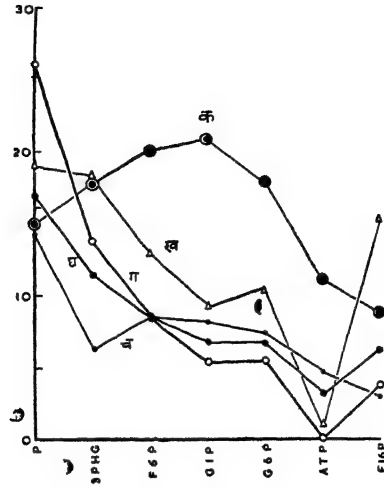
चित्र ३४—कागज-क्रोमैटोग्राम पर शर्करा-फास्फोरिक एस्टरों की गति (देखिए—पठनीय सामग्री-उल्लेख सं० १४, हानेस एवं आइशरउड के आधार पर)

P—अकार्बनिक फास्फेट

3 PHG—फास्फोग्लिसरिक अम्ल

F 6 P—फ्रक्टोज – ६ – फास्फेट

G 1 P—ग्लूकोज – १ – फास्फेट

G 6 P—ग्लूकोज – ६ – फास्फेट

A T P—ऐडीनोसीन ट्राई फास्फेट

F 1, 6 P—फ्रक्टोज १ – ६ फास्फेट

पठनीय सामग्री-उल्लेख

REFERENCES

1 Farradane, J., *Nature*, **167,** 120, 1951.

2 Kuhn, E., Winterstein, A., and Lederer, E., *Zeit. Physiol. Chem.*, **197,** 141, 1931.

3 Weil, H., and Williams, T. I., *Nature*, **166,** 1000, 1950.

4 Martin, A. J. P., and Synge, R. M. L., *Biochem. J.*, **35,** 1358, 1941.

5 Moore, S., and Stein, W. H., *J. Biol Chem.*, **178,** 53, 1949.

6 Partridge, S. M., and Swain, T., *Nature*, **166**, 272, 1905.

7 Consden, R., Gordon, A. H., and Martin, A. J. P., *Biochem. J.*, **38,** 224, 1944.

8 Martin, A. J. P., *Ann. Review of Bioch.*, **XIX,** 518, 1950.

9 Phillips, C. S. G., *Faraday Soc. Discuss.*, *Chromatography* No. 7, 241, Gurney and Jackson, London, 1949.

10 Zechmeister, L., *Progress in Chromatography*, 1938-1947, Chapman and Hall, London, 1950.

11 Partridge, S. M., *Biochem. J.*, **42**, 238, 1948.

12 Williams, J., and Kirby, H., *Science*, **107**, 481, 1948.

13 Jermyn, M. A., and Isherwood, F. A., *Biochem. J.*, **44,** 402, 1949.

14 Hanes, C. S., and Isherwood, F. A., *Nature*, **164,** 1107, 1949.

15 Datta, S. P., Dent, C. E., and Harris, H., *Biochem. J.*, **46**, xlii, 1950.

16 Balston, J. N., and Talbot, B. E., *A Guide to Filter Paper and Cellulose Powder Chromatography*, edited T. S. G. Jones. H. Reeve Angel and Co., Ltd., London, 1952.

17 Landau, A. J., Fuerst, R., and Awapara, J., *Anal. Chem.*, **23,** 162, 1951.

18 McFarren, E. F., *Anal. Chem.*, **23**, 168, 1951.

19 Novellie, L,, *Nature*, **166,** 1000, 1950.

20 Fisher, R. B., Parsons, D. S., and Morrison, G. A., *Nature*, **161,** 764, 1948.

21 Brimley, R. C., *Nature*, **163**, 215, 1949.

22 Fromageot, C., and De Garilhe, M P., *Biochim. et Biophysica Acta*, **4,** 509, 1950.

23 Bull, H. B., Hahn, J. W., and Baptist, V. R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **71**, 550, 1949.

[24] Thompson, J. F., Zacharius, R M., and Steward, F. C., *Plant Physiol.*, **26**, 375, 1951.
[25] Thompson, J. F., and Steward, F. C., *Plant Physiol.*, **26**, 421, 1951.
[26] Block, R. J., *Anal. Chem.*, **22**, 1327, 1950.
[27] McFarren, E F., Brand, K., and Rutkowski, H. R., *Anal Chem.*, **23**, 1146, 1951.
[28] Isherwood, F A., and Hanes, C. S., *Biochem. J.*, **55**, 824, 1953.
[29] Hawthorne, J. R., *Nature*, **160**, 714, 1947.
[30] Dent, C. E , *Biochem. J* , **43**, 169, 1948.
[31] Crumpler, H. R., and Dent, C. E., *Nature*, **164**, 441, 1949.
[32] Crumpler, H. R., Dent, C E., Harris, H , and Westall, R. G., *Nature*, **167**, 307, 1951.
[33] Hanes, C. S., Hird, F. J. R., and Isherwood, F. A., *Nature*, **166**, 288, 1950.
[34] Albon, N., and Gross, D., *Analyst.*, **75**, 454, 1950
[35] De Whalley, H. C. S., Albon, N., and Gross, D., *Analyst.*, **76**, 287, 1951.
[36] Bartlett, J. K., Hough, L., and Jones, J. K. N., *Chem. and Ind.* No. 4, p. 76, Jan. 27th 1951.
[37] Boursnell, J. C., *Nature*, **165**, 399, 1950.
[38] Glister, G. A., and Grainger, A., *Analyst.*, **75**, 310, 1950.
[39] Martin, A. J. P., *Symposia Boich. Soc.*, **3**, 4, 1949.
[40] Bate-Smith, E. C., and Westall, R. G., *Biochim. et Biophysica Acta.*, **4**, 427, 1950.
[41] Knight, C. A., *J. Biol. Chem.*, **190**, 753, 1951.
[42] Pardee, A. B., *J. Biol. Chem.*, **190**, 757, 1951.
[43] Isherwood, F. A., and Jermyn, M. A., *Biochem. J.*, **48**, 515, 1951.
[44] Strain, H H , *Leaf Xanthophylls.*, Carnegie Inst. Washington, D. C. 1938.
[45] Schwab, G. M., *Faraday Soc. Disc.*, *Chromatography*, No. 7, 170, Gurney and Jackson, London, 1949.
[46] Reichstein, T., and Shoppee, C. W., *Faraday Soc, Disc.*, *Chromatography*, No. 7, 305 , Gurney and Jackson, London, 1949.
[47] Smit, W. M., *Faraday Soc. Disc.*, *Chromatography*, No. 7, 248, Gurney and Jackson, London, 1949.
[48] Stewart, A., *Faraday Soc. Disc.*, *Chromatography* No. 7, 65, Gurney and Jackson, London, 1949.
[49] Henderson, G M., and Rule, H. G., *Nature*, **141**, 917, 1938; *J. Chem. Soc* , **1939**, 1568.
[50] Brockman, H , *Faraday Soc. Disc.*, *Chromatography* No. 7, 58, Gurney and Jackson, London, 1949.

[51] ROBINSON, G., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 195, Gurney and Jackson, London, 1949.
[52] TISELIUS, A., *Advances in Colloid Science*, Vol. I., 81, Interscience Publishers, New York, 1942.
[53] TISELIUS, A., *Advances in Protein Chemistry*, Vol. III, 67, Academic Press, New York, 1947.
[54] CLAESSON, S., *Arkiv. Kem. Mineral. Geol.*, **23A**, No. I, 1946.
[55] SHEPARD, C. C., and Tiselius, A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 275, Gurney and Jackson, London, 1949.
[56] HAMILTON, J. C., and HOLMAN, R. T., *Archiv. Biochem. and Biophys.*, **36**, 456, 1952.
[57] LEVI, A. A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography*, No. 7, 125, Gurney and Jackson, London, 1949.
[58] GORDON, A. H., MARTIN, A. J. P., and SYNGE, R. M. L., *Biochem. J.*, **37**, 79, 1943.
[59] LIDDELL, H. F., and RYDON, H. N., *Biochem. J.*, **38**, 68, 1944.
[60] ISHERWOOD, F. A., *Biochem. J.*, **40**, 688, 1946.
[61] TRISTRAM, G. R., *Biochem. J.*, **40**, 721, 1946.
[62] MARTIN, A. J. P., *Symposia Bioch. Soc.*, No. 3, 11, 1949.
[63] SANGER, F., *Biochem. J.*, **39**, 507, 1945.
[64] PERRONE, J. C., *Nature*, **167**, 513, 1951.
[65] MIDDLEBROOK, W. R., *Nature*, **164**, 501, 1949.
[66] BLACKBURN, S., *Biochem. J.*, **45**, 579, 1949.
[67] BISERTE, G., and OSTEUX, **6,** R., *Bull. Soc. Chim. biologique*, **XXXIII**, 50, 1951.
[68] BELL, D. J., *J., Chem. Soc.*, **1944**, 473.
[69] BULEN, W. A., VARNER, J. E., and BURRELL, R. C., *Anal. Chem.*, **24**, 187, 1952.
[70] DONALDSON, K. O., TULANE, V. J., and MARSHALL, L. M., *Anal. Chem.*, **24**, 185, 1952.
[71] MONTGOMERY, R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **74**, 1466, 1952.
[72] LEIGH, T., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 311 Gurney and Jackson, London, 1949.
[73] BURSTALL, F. H., DAVIES, G. R., and WELLS, R. A., *Faraday Soc. Disc., Chromatography* No. 7, 179, Gurney and Jackson, London, 1949.
[74] BURSTALL, F. H., and WELLS, R. A., *Analyst.*, **76**, 396, 1951.
[75] ELSDEN, S. R., *Symposia Bioch. Soc.* No. 3, 74, 1949.
[76] MOYLE, V., BALDWIN, E., and SCARISBRICK, R., *Biochem. J.*, **43**, 308, 1948.
[77] PETERSON, M. H., and JOHNSON, M. J., *J. Biol. Chem.*, **174**, 775, 1948.
[78] RAMSEY, L. L., and PATTERSON, W. I., *J. Assoc. Offl. Agric. Chem.*, **31**, 441, 1948.

79 Ramsey, L. L., and Patterson, W. I., *J. Assoc. Offl. Agric. Chem.*, **31,** 139, 1948.
80 Howard, G. A., and Martin, A. J. P., *Biochem. J.*, **46,** 532 1950.
81 Boldingh, J., *Experientia*, **IV,** 270, 1948.
32 James, A. T., and Martin, A. J. P., *Biochem. J.*, **50,** 679, 1952.
83 James, A. T., Martin, A. J. P., and Howard Smith, g., *Biochem. J.*, **52**. 238, 1952.
84 Stein, W. H., and Moore, S., *J. Biol. Chem.*, **178,** 79, 1949.
85 Craig, L. C., and Post, O., *Anal. Chem.*, **21,** 500, 1949.
86 Craig, L. C., Hausmann, W., Ahrens, E. H., and Harfenist, E. J., *Anal. Chem.*, **23,** 1236, 1951.
87 Spedding, F. H., *Faraday Soc. Disc.*, *Chromatography* No. 7, 214, Gurney and Jackson, London, 1949.
88 Bendall, J. R., Partridge, S. M., and Westall, R. G., *Nature*, **160,** 374, 1947.
89 Boyd, G. E., Schubert, J. E., and Adamson, A. W., *J. Amer. Chem. Soc.*, **69,** 2818, 1947.
90 Cohn, W. E., and Kohn, *H. W.*, *J. Amer. Chem. Soc.*, **70,** 1986, 1948.
91 Mayer, S. W., and Tompkins, E. R., *J. Amer. Chem. Soc.*, **69,** 2866, 1947.
92 Partridge, S. M., and Brimley, R. C., *Biochem, J.*, **51,** 628, 1952.
93 Partridge, S. M., *Biochem. J.*, **44,** 521, 1949.
94 Westall, R. G., *Jl. Science of Food and Agric.*, **1,** 191, 1950.
95 Shewan, J. M., Fletcher, L. I., Partridge, S. M., and Brimley, R. C. *Jl. Science of Food and Agric.*, **3,** 394, 1952.
96 Partridge, S. M., and Westall, R. G., *Biochem. J.*, **44,** 418, 1949.
97 Moore, S., and Stein, W. H., *J. Biol. Chem.*, **192,** 663, 1951.
98 Sweet, R. C., Rieman, W., III., and Beukenkamp, J., *Anal. Chem.*, **24,** 952, 1952.
99 Busch, H., Hurlbert, R. B., and Potter, V. R., *J.*, *Biol. Chem.*, **196,** 717, 1952.
100 Thomas, E. D., Hershey, F. B., Abbate, A. M., and Loofbourow, J. R., *J. Biol. Chem.*, **196,** 575, 1952.
101 Hirs, C. H. W., Stein, W. H., and Moore, S., *J. Amer. Chem., Soc.*, **73,** 1893, 1951.
102 Boardman, N. K., and Partridge, S. M., *Nature*, **171,** 208, 1953.
103 Hale, D. K., and Reichenberg, D., *Faraday Soc. Disc. Chromatography*, No. 7, 79, Gurney and Jackson, London, 1949.

104 STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Biol. Chem.*, **176,** 337, 1948.
105 PHILLIPS, D. M. P., *Nature,* **164,** 545, 1949.
106 JAMES, A. T., MARTIN, A. J. P., and RANDALL, S. S., *Biochem. J.*, **49,** 293, 1951.
107 BRIMLEY, R. C., and SNOW, A., *J. Scient. Instr.*, **26,** 73, 1949.
108 LASKOWSKI. D. E., and PUTSCHER, R. E., *Anal. Chem.,* **24,** 965, 1952.
109 CONSDEN, R., GORDON, A. H., and MARTIN, A. J. P., *Biochem. J.*, **41,** 590, 1947.
110 STEIN, W. H., and MOORE, S., *J. Biol. Chem.*, **190,** 103, 1951.
111 ALM, R. S., WILLIAMS, R. J. P., and TISELIUS, *A.*, *Acta Chemica Scand.*, **6,** 826 1952.
112 JAMES, A. T., *Biochem. J.*, **52,** 242, 1952.

अनुक्रमणिका